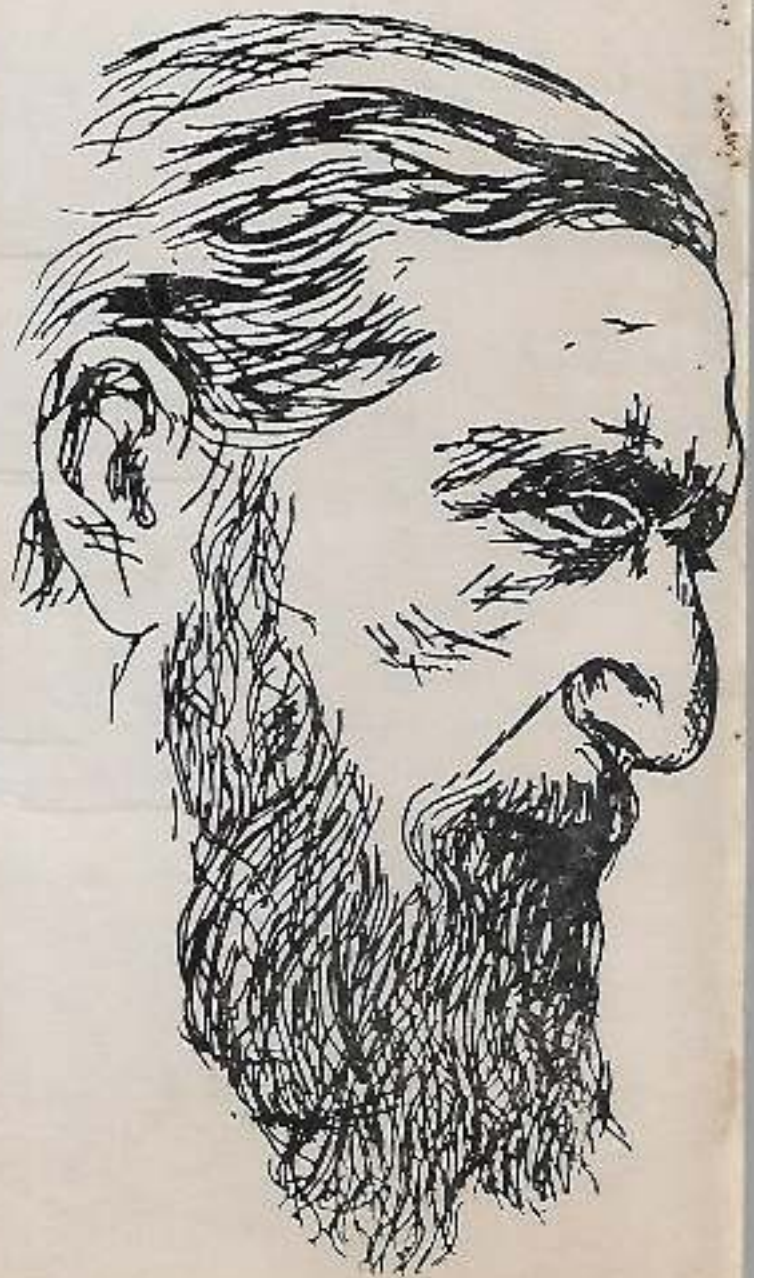


निराला की कहानियों में यथार्थवाद



वीर सागर जैन

निराला की कहानियों में यथार्थवाद



निराला की कहानियों में यथार्थवाद

वीरसागर जैन

शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, एम. ए., एम. फिल.



दी स्टूडेंट्स बुक कम्पनी

विषयानुक्रम

	पृष्ठ
1. पृष्ठभूमि निराला के यथार्थवाद की जन्मभूमि : व्यक्तित्व एवं युगीन परिवेश	1-16
2. प्रथम अध्याय यथार्थवाद : जन्म, स्वरूप एवं निकटस्थ सन्दर्भ	17-30
3. द्वितीय अध्याय निराला की कहानियों में वस्तुगत यथार्थवाद	31-69
4. तृतीय अध्याय निराला की कहानियों में शिल्पगत यथार्थवाद	70-88
5. चतुर्थ अध्याय निराला की कहानियों में व्यंग्य और जीवन-संघर्ष	89-96
6. सिंहावलोकन	97-98
7. परिशिष्ट सहायक-ग्रन्थ-सूची	99-100

भूमिका

श्री वीरसागर जैन की 'निराला की कहानियों में यथार्थवाद' का मूल्य यह है कि यहाँ निराला की कविता पर नहीं, केवल उनकी कहानियों पर लिखा गया है।

यह इसलिए जरूरी था, क्योंकि किसी लेखक के गद्य साहित्य को समझे बिना उसके कवितात्मक लेखन को नहीं समझा जा सकता। कारण यह है कि कविता में जो आत्मगत स्तर पर सम्पुटित रूप में बिम्ब-प्रतीकों-मिथकों के रूप में ध्वनित होता है, वह गद्य रचना में प्रत्यक्षतः वर्णित होता है, अतः कविता में जो निहित-गर्भित रहता है, वह गद्य में खुल जाता है।

इस नियम या सिद्धान्त के अन्तर्गत रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, गजानन माधव भुवित्तबोध, अज्ञेय और निराला के गद्य को पढ़कर उनके पद्य को सरलता से समझा जा सकता है।

इस दृष्टि से शायद सर्वप्रथम मैंने अपनी पुस्तक 'निराला की साहित्य-साधना' (विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा; अब अप्राप्य) में निराला की कविता तथा सम्पूर्ण कथा-साहित्य का एक साथ अनुशीलन किया था (1960 ई० के आस-पास), तब से अब तक निराला पर बहुत लिखा गया है, तो भी उनकी कविता पर अधिक दृष्टि केन्द्रित की गई है।

श्री वीरसागर जैन ने मनोयोग से निराला की कहानियों में यथार्थ का अन्वेषण किया है। उन्होंने यथार्थवाद, निराला का यथार्थवाद, निराला की कहानियों में वस्तुगत यथार्थवाद, शिल्पगत यथार्थवाद, व्यंग्य और जीवन-संघर्ष पर जो लिखा है वह सही और शंकुभूत (Pointed) है और श्री जैन इस विषय को समझते हैं।

निराला के उपन्यास और उनके अन्य गद्यलेखन को भी ले लिया जाता तो सम्पूर्णता आ जाती, परन्तु यह कार्य आगामी कृति में किया जाएगा -- ऐसी आशा है।

निराला पर लिखे गए विपुल आलोचनात्मक लेखन में प्रस्तुत पुस्तक का अपना महत्त्व है और यह निराला के पाठकों, छात्रों और अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए पठनीय है।

—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

'गया-प्रयाग'

सात-ड-पच्चीस

जवाहर नगर, जयपुर-4

प्राक्कथन

निराला मजदूरों के मसीहा थे। उन्होंने 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी मजदूर विषयक अनेक उत्कृष्ट काव्यरचनाएँ की हैं। अतः उनकी कहानियों के विषय में तैयार की गई इस कृति को मैं आज मजदूर-दिवस की सौवीं वर्षगांठ के अवसर पर पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए विशेष हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

आज हिन्दी-जगत् में निराला का कहानीकार उनके कविरूप के नीचे दब रहा है। उनका कविरूप हिन्दी-जगत् के लिए जितना जाना-पहिचाना है, उनका कहानीकाररूप उतना ही अनजाना है। सम्पूर्ण निराला-साहित्य पर विशेष रूप से अध्ययन-लेखन-कार्य करने वाले कतिपय मनीषियों को छोड़कर शेष हिन्दी-जगत् को उसके कहानी-कोश का पता प्रायः नहीं है, जब कि कहानीकार निराला की देन कवि निराला से किसी भी अर्थ में कम नहीं है। पता नहीं क्यों—आज हिन्दी-जगत् में कवि निराला जितना यशस्वी है, कहानीकार निराला उतना ही उपेक्षित है?

छायावाद मुख्य रूप से कविता का काल है। उसमें हृदयोद्गारों के साथ-साथ सामाजिक चिन्तन की अभिव्यक्ति भी कविता के माध्यम से ही विशेष हुई, किन्तु सामाजिक चिन्तन की यह धारा दार्शनिकता के क्रोड़ में होने से कविता में बहुत धुँधली या अस्पष्ट थी। उसमें कवि का अभीष्ट अभिप्राय पूरे दम-खम के साथ नहीं आ पा रहा था। फलतः लगभग सभी छायावादी कवियों ने गद्य का आश्रय लिया और उसमें अपने सामाजिक चिन्तन को समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान की। और इस प्रकार इस काल के गद्य में आगामी काल—प्रगति-काल—के बीज बो दिये गये। छायावाद-काल से प्रगति-काल तक की साहित्य-धारा को जोड़ने और समझने में इस काल का गद्य सेतु का कार्य करता है। इसे हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी को अवश्य समझना चाहिए।

निराला की कहानियाँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। इनमें निराला का सामाजिक चिन्तन बड़ी स्पष्टता और दृढ़ता के साथ मुखरित हुआ है। उनके चिन्तन की जो धारा कविता में बड़ी मंद, अस्पष्ट और शिथिल-सी थी, वह उनकी कहानियों में बड़ी तीव्रता, स्पष्टता और दृढ़ता के साथ बह निकली है। यथार्थवाद निराला की कहानियों में समागत महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण है जो भी हिन्दी-साहित्य के लिए बहुत काम की चीज है। इसे अवश्य उभरकर सामने आना चाहिए।

ऐसे ही अनेक विचारों से प्रेरित होकर मैंने 'निराला की कहानियों में यथार्थवाद' शीर्षक यह लघु कृति तैयार की है। यहाँ मेरा अध्ययन यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में ही केन्द्रित रहा है। आशा है विद्वज्जन इस अध्ययन को और आगे बढ़ावेंगे।

इस अध्ययन में मुझे मेरे गुरुजी डॉ० राधेश्यामजी जांमिड़ (सहायक प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) से पुनः-पुनः अनेक महत्वपूर्ण दिशानिर्देश प्राप्त हुए हैं। पुस्तक-प्रकाशन के इस शुभ अवसर मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ० विश्वम्भरनाथजी उपाध्याय ने इस कृति की 'भूमिका' लिखी है। उपाध्यायजी हिन्दी-जगत् के प्रतिष्ठित समालोचक हैं; निराला-साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं। अतः इस पुस्तक पर आपकी टिप्पणी बहुत महत्व रखती है। इस प्रकार इस कृति को अग्रेषित करने के लिए मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।

[मजदूर-दिवस]

1 मई, 1990

पता—

पुत्र श्री रामकिशन जैन

मु० पो० गुड़ाचन्द्रजी-322 213

जिला सवाई माधोपुर (राज०)

—वीरसागर जैन

निराला के यथार्थवाद की जन्मभूमि : व्यक्तित्व एवं युगीन परिवेश

0.0. विचारणीय है कि छायावाद के स्तंभस्थानीय कवि होते हुए भी निराला को गद्य का सहारा क्यों लेना पड़ा ? यह बात अन्य श्रेष्ठ छायावादी कवियों के बारे में भी अनुसंधेय है। वस्तुतः जीवन के लिए मात्र भावुकता ही पर्याप्त नहीं है, जो कविता में प्रधान रूप से पायी जाती है। बौद्धिक तत्त्व की प्रधानता होने से गद्य में ही जीवन के यथार्थ को तार्किक ढंग से मजबूती के साथ प्रस्तुत कर सकने की क्षमता विद्यमान होती है। यही कारण है कि साहित्य को अधिक गहराई से जीवन से जोड़ने के लिए प्रसिद्ध पद्यकारों ने भी गद्यकार बनना उचित ही नहीं, अनिवार्य समझा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्रोह के समर्थक और प्रचारक निराला-जैसे क्रान्तिदर्शी और क्रान्तिकारी पुरुष को गद्य का सहारा लेना और भी आवश्यक था। अपने युगीन परिवेश में गरल-पान कर बने उनके आक्रोशी और विद्रोही व्यक्तित्व के लिए गद्यशैली का आश्रय लेना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था।

व्यक्ति की विचारधारा का निर्माण करने में उसके व्यक्तित्व और युगीन परिवेश का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। निरालाजी इस तथ्य के अपवाद नहीं हैं। अतः उनकी यथार्थवादी विचारधारा को उनके व्यक्तित्व तथा पारिवारिक और सामाजिक परिवेश के सन्दर्भ में समझा जा सकता है।

0.1. व्यक्तित्व—

निराला का व्यक्तित्व एक विशिष्ट व्यक्तित्व है, जिसे उनके जीवनवृत्त की प्रमुख रेखाओं के द्वारा आरेखित किया जा सकता है।

0.1.1. जन्म, शिक्षा और विवाह—

निराला का जन्म वसन्त पंचमी, रविवार, सन् 1896 ई. को मेदिनीपुर (बंगाल) जिले के महिषादल राज्य में पण्डित रामसहाय त्रिपाठी की द्वितीय भार्या की कुक्षि से हुआ था। माँ धार्मिक वृत्ति की थी। माँ का साया उन पर से अल्पायु में ही उठ गया था।

निरालाजी 9वीं कक्षा तक ही पढ़ पाये। नवीं तक तो ये जमकर पढ़े, किन्तु उसी समय इनका विवाह हो जाने के कारण पढ़ाई से इनका मन उचटने लगा। परिणामस्वरूप इन्होंने दसवीं की परीक्षा दी ही नहीं। किन्तु निराला ने इस कमी

2/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

को स्वाध्याय के द्वारा दूर किया। उन्होंने स्वयं लिखा है कि—“आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को गुरु माना; लेकिन शिक्षा अर्जुन की तरह नहीं, एकलव्य की तरह पायी।”

निराला ने ब्रज, अवधी, बँगला, अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत आदि का रातों जाग-जागकर अभ्यास किया—

“मैं रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक ‘सरस्वती’ लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगा, फिर जो आनंद हुआ, ब्रह्मानन्द से कम नहीं कहा जा सकता।”

निराला ने गीता और दर्शन का भी अध्ययन किया। विवेकानन्द और दयानन्द की वाणियों का भी स्वाध्याय किया।

निराला का विवाह सन् 1911 ई० में 15 वर्ष की अल्पायु में ही हो गया था। उनकी पत्नी मनोहरा देवी की आयु उस समय 11 वर्ष थी। सन् 1918 में एन्प्लुएँजा से मनोहरा देवी का निधन हो गया। अर्थाभाव से उनका इलाज भी नहीं हो पाया था। उस समय निराला की आयु 22 वर्ष और मनोहरा देवी की आयु मात्र 18 वर्ष थी। दैव के इस आघात से निरालाजी तिलमिल गये। ‘गीतिका’ के समर्पण में निरालाजी ने उनके प्रति अपनी प्रेमास्था इस प्रकार व्यक्त की है—

“जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय मैं आँखें नहीं मिला सका—लजाकर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश, पिता के पास चला गया था और उस हीन-हिन्दी प्रान्त में बिना शिक्षक के ‘सरस्वती’ की प्रतियाँ लेकर पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी, जिसका स्वर गृहजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे (संगीत) स्वर को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षणमात्र में मेरी रक्षता को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य शृंगार की पूर्ति की, उस सुदक्षिणा, स्वर्गीया प्रिया-प्रकृति श्रीमती मनोहरा देवी को सादर।”

मनोहरा देवी ने अपने पीछे एक पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी और एक पुत्री सरोजकुमारी को छोड़ा। पुत्र का जन्म 1914 और पुत्री का जन्म 1917 ई० में हुआ था।

0.1.2. अभिरुचियाँ—

निरालाजी ने यद्यपि स्कूली शिक्षा बहुत कम पायी, किन्तु अपनी रुचि के अनुसार अनुभव की शिक्षा अत्यधिक प्राप्त की। आठवीं-नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते इन्हें समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ पढ़ने का शौक भी लग गया था। इसी समय उनका परिचय ‘सरस्वती’ जैसी हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका से भी हुआ। वे इसकी ओर अत्यधिक आकर्षित हुए।

ब्रज, अवधी और संस्कृत भाषा के पदों की रचना करता भी निराला की विशेष रुचि का था। निराला की व्यायाम, कुश्ती, घुड़सवारी आदि में विशेष अभिरुचि थी। बचपन में महिषादल के राज्य परिवार से सम्पर्क के कारण एवं माँ के साथ मंदिर में जाने से संगीत में रुचि अंकुरित हुई।

प्रकृति का गहराई से देर तक अध्ययन करते रहना उनकी रुचि का अभिन्न अंग था। अपने विद्यार्थि-जीवन में ही जब कभी कोई सहपाठी पूछता कि—कहो त्रिपाठी ! क्या हो रहा है ? तो वे उत्तर देते—“मैं प्रकृति के इस महाग्रन्थ का, जो मेरे और तुम्हारे सामने खुला पड़ा है, अध्ययन कर रहा हूँ। तुम परीक्षा में पास होने के लिए जी-जान लड़ा रहे हो और मैं प्रकृति के अध्ययन से प्राणवान् हो रहा हूँ।”¹

निराला ने अभिनय-कला का भी रुचिपूर्वक अभ्यास किया। उन्होंने गिरीश-चन्द्र और डी. एल. राय आदि के बीसियों नाटकों में रंगमंच पर सफल अभिनय किया और अभिनेता के रूप में बंगाल में पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी।

इन सब तत्त्वों ने उनके जागरूक व्यक्तित्व की निर्मिति की थी।

0.1.3. स्वभाव—

यद्यपि निरालाजी की अभिरुचियों से उनके स्वभाव का काफी हद तक अनुमान लगाया जा सकता है, तथापि यहाँ उनकी कुछ स्वभावगत विशेषताओं की ओर इशारा कर देना आवश्यक है।

स्वामिमान निराला के स्वभाव की महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसके कारण वे समस्त सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक और पारिवारिक संघर्षों को प्रसन्न-वदन भेल गये।

प्रारम्भ से ही मातृविहीन बालक सुर्जकुमार को महिषादल में रामशंकर की माँ, जो बँसवाड़े की थी, आदि का अत्यधिक स्नेह मिला था। सुर्जकुमार को अपने पिता श्री रामसहाय तिवारी भी इकलौता पुत्र होने के कारण अत्यधिक स्नेह देते थे। इस अमित स्नेह के फलस्वरूप सुर्जकुमार ने स्नेहप्राप्ति को अपना अधिकार ही समझ लिया। उसकी प्रवृत्ति में हठवादिता का विकास हुआ। किसी के समक्ष न झुकना, अपनी बात मनवाने के लिए आग्रही बने रहना, उसके स्वरूप का एक अंग बन गया। कहानीकार निराला में उसकी इस प्रवृत्ति का बराबर परिचय मिलता है।

अपने इस स्वभाव के कारण वे तमाम विरोधों के बीच अडिग रहे और साहित्य-सृजन से विमुख न हुए। इसी की ओर संकेत करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा लिखते हैं—

4/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

“यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला ।
ढहा और तन दूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है ॥
शिथिल त्वचा, डल-डल है छाती,
लेकिन अभी सँभाले थाती ।
और उठाये विजय पताका,
यह कवि है अपनी जनता का ॥”¹

निरालाजी की श्रद्धेया श्रीमती महादेवी वर्मा भी लिखती हैं—

“प्रकृति और चेतना, न जाने कितने निष्फल प्रयोगों के उपरान्त ऐसे मनुष्य का सृजन कर पाती है, जो अपने स्रष्टाओं से श्रेष्ठ हो ॥”²

अपनी इसी अवधारणा के कारण निरालाजी ने गांधी और नेहरू जैसे लोकप्रिय व महान् व्यक्तियों को भी कुछ न समझा । अपनी कृतियों के सम्बन्ध में आप स्वयं चुनौती के साथ लिखते हैं—

“यदि विश्व-साहित्य की कोटि में मेरी कृतियाँ नहीं तुल्य पातीं तो मुझे लात मारकर बाहर निकाल दीजिए । मैंने जो कुछ भी लिखा, सदैव नूतनता के दृष्टिकोण से लिखा, उसका व्यक्तित्व निश्चय ही महान् असाधारणता का पर्याय कहा जायेगा ॥”³

ऐसा स्वाभिमानपूर्ण आत्मविश्वास हर किसी में नहीं हो सकता । पण्डित बालकृष्ण भट्ट के अनुसार—

“आत्मगौरव एक प्रकार का साधन है, जिसे बनाये रखना सहज काम नहीं है । यावत् बुराइयों से अपने को अलग रख सके, तब आत्म-गौरव पाने का दावा कर सकता है ॥”⁴

तात्पर्य यह है कि निराला का व्यक्तित्व अपराजेय और आजादी-पसंद व्यक्तित्व है । दबाव वे कभी नहीं सह सकते थे । आमतौर से वह दबाव, जिसकी कोई वजह न मिलती हो । इसकी एक घटना है—

गढ़ाकोला में ताल्लुकेदार भगवानदीन दुवे की रखैल मुसलमान पतुरिया के स्नेहमय व्यवहार से शिशु सुर्जकुमार बड़ा ही प्रभावित हुआ था । उसने उसके निकट बैठकर संगीत की कुछ लय-ध्वनियों का परिचय प्राप्त किया था । एक बार जनेऊ

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, कवर पृष्ठ अंतिम ।

2. आधुनिक हिन्दी-काव्य में यथार्थवाद, पृष्ठ 258

3. वही, पृष्ठ 258

4. आत्मगौरव, पृष्ठ 89

(निबन्ध-मिलन, सम्पादक डॉ० सत्येन्द्र, पृष्ठ 20 पर उद्धृत)

हो जाने के बाद पिताजी ने एकान्त में बुलाकर कहा कि— अब आज से खबरदार ! पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत; किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी कि जनेऊ चाहे तीन बार हो, लेकिन ये वहाँ का भोजन न छोड़ेंगे। और जनेऊ हो जाने के पश्चात् भी उन्होंने पतुरिया-पुत्र फतेह बहादुर के लोटे से कुएँ पर पानी पिया। पिताजी की मार पड़ी। परन्तु पतुरिया के घर से सुर्जकुमार का सम्बन्ध न टूटा। उन्होंने मुक्त भाव से सम्बन्ध बनाये रखने के विचार से पतुरिया-पुत्र से भुना चना लेकर सबके सामने चबाया।

निरालाजी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्रोह के समर्थक और प्रचारक रहे हैं। महादेवी वर्मा ने एक स्थल पर उनकी विद्रोहात्मक प्रकृति के विषय में लिखा है—

“निरालाजी विचार से क्रान्तिदर्शी और आचरण से क्रान्तिकारी हैं। वे उस झंझा के समान हैं जो हल्की वस्तुओं के साथ भारी वस्तुओं को भी उड़ा ले जाती है; उस मंद समीर जैसे नहीं, जो सुगंध न मिले तो दुर्गन्ध का भार ढोता फिरता है।”

जिनकी रूढ़िवादिता और परंपरा-प्रियता और संघर्ष-भीरुता पर निरालाजी ने प्रहार किया, वे सबके सब उनके विरोधी बने, किन्तु विरोध से वे कभी विचलित नहीं हुए। विरोध के बड़े से बड़े बवंडर में भी वे पहाड़ की तरह अडिग रहे।

नवीनता की स्थापना में अदम्य साहस की आवश्यकता होती है। किसी भी युग में नवीनता को निर्विघ्न मार्ग नहीं दिया गया। परम्पराएँ और रूढ़ियाँ उसमें आगे से आगे विघ्न उपस्थित कर देती हैं। इसी कारण नवीनता के सभी स्थापकों को “श्रेयांसि बहुविघ्नानि” की नीति के अनुसार विपुल विरोध का सामना करना पड़ता है, किन्तु विरोध की स्थिति में युगपुरुष न्यायपथ से प्रविचलित नहीं होते हैं, नवीनता की अवतारणा में चेष्टारत ही रहते हैं। निरालाजी ऐसे ही युगपुरुष हैं जिन्होंने सदैव परम्परा का विरोध और नवीनता का स्वागत किया। नवीनता का स्वागत कर निरालाजी सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक जीवन की विकृतियों को दूर करने के लिए विद्रोह का शंख फूँकते रहे। वे कभी किसी की त्रुटि को सहन नहीं कर सके। चाहे वह किसी व्यक्ति की हो, चाहे समाज की हो और चाहे वह किसी बड़े राष्ट्रीय नेता की हो।

निरालाजी की इस विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का प्रारम्भ में भले ही विरोध हुआ हो, किन्तु आज उनकी वही प्रवृत्ति प्रशंसनीय हो गई है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—

“जिस समय उच्च भावों को प्रकट करने की किसी में क्षमता नहीं थी, निराला ने उन भावों को प्रकट किया। सरहपा जीवन में विद्रोही थे और निराला को भी हम उसी विद्रोही रूप में पाते हैं। निरालाजी एक विलक्षण पुरुष हैं।”¹

6/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

निरालाजी न केवल महान् साहित्यकार थे, अपितु महामानव भी थे। दूसरे की सहायता के कर्तव्य-निर्वाह में वे स्वयं कष्ट उठाते थे। पीड़ितों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति को वे प्रदर्शन मात्र मानते थे। इसीलिए पीड़ित वर्ग की सहायता में वे सर्वस्व त्याग करने को भी उद्यत रहते थे। उनकी इस प्रवृत्ति का विवरण महादेवी वर्मा ने अपने एक संस्मरण में इस प्रकार दिया है—

“.....पर दूसरे ही दिन से मेरे गर्व की व्यर्थता सिद्ध होने लगी। वे सवेरे ही आ पहुँचे। पचास रुपये चाहिए, किसी विद्यार्थी का परीक्षा-शुल्क जमा कराना है, अन्यथा वह परीक्षा में नहीं बैठ सकेगा। संध्या होते-होते किसी साहित्यिक मित्र को साठ देने की आवश्यकता पड़ गई। दूसरे दिन लखनऊ के किसी तंगे वाले की माँ को चालीस का मनीऑर्डर करना पड़ा। दोपहर को किसी दिवंगत मित्र की भतीजी के विवाह के लिए सौ देना अनिवार्य हो गया और तब उनके व्यवस्थापक के नाते यह दानखाता मेरे हिस्से में आ पड़ा।”¹

महाप्राण निराला का जीवन ऐसी ही घटनाओं का पर्याय है जिनमें देश के दरिद्रनारायण की सेवा में उन्होंने अपने जीवन की दैनिक उपयोग और आवश्यकता की वस्तुओं को भी समर्पित कर दिया था। मानव-सेवा निरालाजी के जीवन का सर्वस्व है। सन् 1953 में मैनपुरी के महाराजा और महारानी ने निरालाजी की कोई सेवा करने की इच्छा प्रकट की तो निरालाजी ने राजा साहब के ही नौकरों की ओर संकेत करके उत्तर दिया था— इन नौकरों की उचित देख-भाल करना, ये भी इन्सान हैं और इन्सानों की सेवा ही मेरा सब कुछ है।

0.1.4. संघर्षमय जीवन—

निरालाजी के उपर्युक्त जीवन-वृत्त का अवलोकन करने पर यह भली-भाँति समझ में आता है कि उनका जीवन एक संघर्षपूर्ण जीवन रहा है। क्या उनका पारिवारिक परिवेश, क्या आर्थिक स्थिति, क्या सामाजिक परिवेश और क्या ही साहित्यिक परिवेश—सभी में उन्हें आजीवन संघर्ष के पहाड़ों को पार करना पड़ा। बचपन से ही उनके इस संघर्षरत जीवन की ऐसी शुरुआत हुई कि निराला एक संघर्षपसन्द व्यक्ति बन गये। उनको इस संघर्षपूर्ण जीवनी के बारे में डॉ० वेदव्रत शर्मा लिखते हैं—

“निराला का जीवन निरन्तर कुरुक्षेत्र बना रहा। कुरुक्षेत्र में पाण्डवों को कुछ विश्राम तो भी मिल जाता था, किन्तु निराला को कभी सुख के क्षण ही न मिल सके। उन्होंने कभी किसी से सहायता के लिए प्रार्थना नहीं की।”²

1. महाप्राण निराला (जो रेखाएँ न कह सकेगी), पृष्ठ 2, 3 व 5

2. निराला के काव्य का जैतीबैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ 49

सर्वप्रथम अपने घर में ही इनके पिताजी ऐसे थे कि बहुत स्नेह देते हुए भी मारते वक्त इतने तन्मय हो जाते थे कि यह तक भूल जाते थे कि वे दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं।

“मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अबतक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।”¹

माताजी तो उन्हें छोटा-सा ही छोड़कर चल बसी थीं। इनके पालन-पोषण का भार अकेले पिताजी के ऊपर आ गया था। सन् 1916 के करीब पिता श्री राम-सहाय त्रिपाठी को पक्षाघात हो गया। निराला उन्हें बंगाल से घर—अपने गाँव गढ़ाकोला, जिला उन्नाव, उ० प्र०—ले आये, किन्तु वे मरकर ही रोगमुक्त हुए।

इसके पश्चात् तो निराला पर दैवी प्रकोप का ताँता ही बँध गया। 1918 में एन्फ्लुएँजा से इनकी पत्नी मनोहरा देवीजी का निधन हो गया और सन् 1918-19 के ही अन्दर-अन्दर तो इनका पूरा परिवार ही मृत्यु के मुख में समा गया।

पत्नी की मृत्यु का वज्रपात और दो मातृहीन बच्चों का पोषण-भार! एक विकट समस्या उत्पन्न हो गयी, किन्तु निराला-पर्वत इन भङ्गावतों से कैसे हिल सकता था? वह अपनी कर्मठता और दृढ़ता के बल पर सब कुछ प्राण-पण से सहने को तैयार था।

पिता और पत्नी की मृत्यु के बाद निराला ने स्वयं महिषादल में नौकरी कर ली, परन्तु माता-पिता व पत्नी की मृत्यु और बच्चों के पोषण की समस्या के कारण इनमें कुछ उदासी धिर आती थी। उनकी उदासीनता को देखकर अधिकारियों के व्यवहार में भी परिवर्तन होने लग गया। और निराला को लेकर महिषादल में एक विवाद उठ खड़ा हुआ जिससे क्षुब्ध होकर सन् 1920 में उन्होंने राज-सेवा से त्याग-पत्र दे दिया। परिस्थितियाँ जटिल से जटिलतर होती चली गईं। सन् 1930 में उन्होंने बड़ी विकट परिस्थितियों में सभी सामाजिक बन्धनों को तोड़कर अपनी पुत्री सरोज का विवाह कलकत्ता-निवासी शिवशेखर द्विवेदी के साथ कर दिया। इस विवाह में न लगन, न मुहूर्त, न बारात और न गीत-बाजा। इधर-उधर के लोग आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये। अपने वैवाहिक जीवन के चार-पाँच वर्ष पूरे करके उनकी प्रिय पुत्री सरोज भी परलोक सिंघार गई। इससे तो निराला पर मानों वज्रपात हो गया। इसी समय उन्होंने ‘सरोज-स्मृति’ लिखकर उसके प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित किये, जो आज हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ शोकगीति-रचना मानी जाती है।

साहित्य के क्षेत्र में भी निराला ने कोई कम संघर्ष थोड़े ही किया है। प्रारम्भ में वे अपनी रचनाएँ प्रकाशनार्थ पत्र-पत्रिकाओं को भेजते तो सम्पादकगण

एक-दो पंक्ति में उत्तर देते हुए वापस कर देते। इनकी प्रसिद्ध रचना 'जूही की कली' तक को 'सरस्वती' के सम्पादक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने वापस कर दिया, क्योंकि छन्दमुक्त कविता के इस प्रकार के ढाँचे को वे समझ नहीं पा रहे थे। इससे भी निराला के दिल को ठेस पहुँची। इसके बाद फिर कभी निराला ने 'सरस्वती' में एक लेख भेजा, जो छप गया। फिर तो द्विवेदीजी से उनका पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया। वस्तुतः द्विवेदीजी का निराला से कोई विरोध नहीं था और वे नई मनीषा को प्रोत्साहित भी करते थे, किन्तु नवीनता को वे अपने दृष्टि-कोण से नापते थे।

सन् 1920 के बाद निराला ने रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित 'समन्वय' पत्र में काम किया, किन्तु वहाँ भी वे अधिक दिन न ठहर सके। सन् 1922 में सेठ महादेवप्रसाद द्वारा प्रकाशित 'मतवाला' में काम करने लगे। इस पत्र में भी निराला ने एक ही वर्ष काम किया। 'मतवाला' छोड़कर निराला बाजारू ढंग के काम, जैसे—विज्ञापन बनाना, अनुवाद करना, दवाइयों के पेम्पलेट लिखना, भी करने लगे। इससे भी निराला को उपयुक्त आर्थिक लाभ न हो पाया। दिन-प्रतिदिन उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली गई। इससे साहित्य-साधना भी निराबाध न रही। अब निराला की स्थिति 'माया मिली न राम' जैसी करुण हो गई। 'सुधा' पत्रिका ने निराला की कृतियों का स्वागत किया, किन्तु इससे भी निराला का उदर-भरण न हो सका। विवश होकर 'परिमल' के सर्वाधिकार को कौड़ियों के मोल बेच देना पड़ा।

बड़े-बड़े साहित्यकार तो इनसे रुष्ट हो ही गये थे, समय-समय पर राज-नीतिज्ञों से भी टक्कर हो जाती थी। सन् 1932 के बाद निराला ने 'भारत में वर्तमान धर्म' नामक लेख प्रकाशनार्थ भेजा तो 'विशाल भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उसे 'साहित्यिक सन्निपात' शीर्षक से प्रकाशित कर दिया और लोगों से सम्मतियाँ माँगी। बड़ा हंगामा मच गया। कई लोगों ने इस लेख की 'पागल का प्रलाप' कह कर निन्दा की। स्वयं चतुर्वेदीजी ने निराला को पागल सिद्ध करने में कोई कसर नहीं रखी। इस प्रकार निराला का सम्पूर्ण जीवन कष्टों से आपूर्ण और संघर्षरत रहा, दुःख का पर्यायवाची ही बन गया। 'सरोज-स्मृति' में उनका यह दुःख इस प्रकार फूट पड़ा है—

“दुःख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही।”¹

0.1.5. अन्य कुछ प्रमुख घटनाएँ—

निराला के जीवन-वृत्त का अध्ययन करते समय उनके जीवन की कुछ ऐसी घटनाएँ भी प्राप्त हुई हैं जिनका किसी प्रकरण-विशेष में उल्लेख किया जाना सम्भव

1. प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, पृष्ठ 148

नहीं हो सका है, जबकि वे भी स्पष्टतः निराला के यथार्थवादी दृष्टिकोण की जन्म-भूमि हैं, अतः यहाँ उनका अलग से उल्लेख करना आवश्यक समझा है। कुछ प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(1) “एक बार एक परीक्षा में एक निबन्ध का प्रश्न आया था कि ‘तुम अपने जीवन में क्या बनोगे?’ निरालाजी ने इसका उत्तर दिया था—‘मैं निराला बनूँगा। जब मैं कविता-पाठ करूँगा तो अनुभूतियों की सामूहिक वर्षा होने लगेगी। जब मैं जनता के बीच चलूँगा तो लोगों के हृदय मनुष्योचित भावनाओं से आर्द्र होने लगेंगे। जब मैं अपना बरद हस्त उठाऊँगा तो देश का राष्ट्रपति भी (ध्यान रहे, उस समय भारत परतन्त्र था) साष्टांग प्रणाम करेगा। इसलिए भी मैं निराला बनूँगा, क्योंकि देश अभी गरीब है और अधिक दयनीयता का वरण आज के भारतीय साहित्यकारों को सिर्फ श्रेयस्कर ही नहीं है, अनिवार्य है। तभी तो जनता का प्रतिनिधि साहित्य-खण्डा बन सकूँगा।”¹

(2) जब वे महिषादल में थे, तब एक दिन उन्होंने सुना कि राजा किशती पर हवाखोरी के लिए निकले थे। किसी भूखे पुजारी ने उन्हें संकेत से अपनी दीन-हीन स्थिति का परिचय देना चाहा। उसने पेट पर हाथ फेर कर अँगूठा हिलाया। राजा के सिपाहियों ने उस पुजारी को उसकी ऐसी ‘घृष्टता’ के लिए पकड़ लिया और बुरी तरह पीटा। उसकी रोजी छीन ली गयी। निराला का मन इस घटना से क्षुब्ध हो उठा। राजवर्गीय लोगों के प्रति विरोध और साधारण व हीन स्थिति वालों के साथ सहानुभूति का भाव क्रमशः बढ्दमूल होता गया। इन भावनाओं ने ही ‘राजा साहब को ठेंगा दिखाया’ जैसी यथार्थवादी कहानियों को जन्म दिया है।

(3) महिषादल में ही एक बार मदनगोपाल के मन्दिर में कृष्ण-राधा की मूर्ति से गहने चुरा लिये गये। उस मन्दिर में बैठकर राजकर्मचारी सुर्जकुमार कथाएँ लिखा करते थे। सिपाहियों ने संदेह में उन्हें ही बन्दी बना लिया। इसका प्रभाव भी निरालाजी के व्यक्तित्व पर पड़ा। उन्हें यहाँ निरपराधी को अपराधी सिद्ध करने की पुलिस की प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष परिचय हुआ।

इस घटना से बनी हुई विचारधारा ने ही निराला को राजनीतिक जीवन की विकृतियों को चित्रित करने वाली ‘न्याय’ जैसी कहानियाँ लिखने को बाध्य किया। वस्तुतः “निराला ने समाज का विष पीकर जो अनुभव प्राप्त किया, उसे ही कथा-साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया।”²

1. निराला : सम्पादक पद्मसिंह शर्मा ‘कमलेश’, पृष्ठ 14
(जीवन रेखा : विश्वम्भर ‘भरुण’)

2. कथाशिलपी निराला, पृष्ठ 27

(4) पन्द्रह वर्ष की आयु में निरालाजी को गँवही लेने के लिए ससुराल जाना पड़ा। तब वे पण्डित पथवारीदीन उर्फ कुल्ली के इक्के पर बैठकर ससुराल पहुँचे थे। जब निरालाजी की सास ने कुल्ली के इक्के पर इन्हें आते हुए देखा तो पहले तो कुछ नहीं कहा, अपने दामाद की आवभगत की। फिर उन्हें समझाया कि वे कुल्ली से हेल-मेल न रखें। कुल्ली उन पर लट्ठू था। उसने निरालाजी का साथ किया। वह उन्हें धुमाने ले गया, अपने घर पर स्वागत किया, उन्हें मिठाई खिलाई, भोजन कराया। निरालाजी उससे अत्यधिक प्रभावित हुए। बाद में उन्हें कुल्ली के दुर्गुणों का भी पता लगा, परन्तु निरालाजी ने उसके दुर्गुणों के बजाय सदगुणों पर ही ध्यान दिया। वे कुल्ली के संगठनात्मक कौशल, उसकी नेतृत्वक्षमता और मुसलमान स्त्री से विवाह करने के साहस से काफी प्रभावित हुए और 'कुल्लीभाट' नामक उपन्यास की रचना करके उसमें उसे नायक का गौरवपूर्ण स्थान दिया।

(5) द्वितीय महायुद्ध के समय निरालाजी ने गंगाप्रसाद पांडेय से कहा था—
“अरे भाई! युद्ध के समय जो युद्ध की तैयारी नहीं करता वह पीटा जाता है, इसलिए इस समय भारत को स्वतंत्रता घोषित करके किसी भी विरोधी से लड़ने को तैयार हो जाना चाहिये। यह तो तुम जानते ही हो कि इस मशीनरी के युग में भी जनमत ही सबसे बड़ा बल है जो हमारे पास है। मगर यहाँ के नेता लोग गाँधीवाद की सड़ांध से बाहर साँस ही नहीं लेना चाहते। हो तो हो क्या? सुभाष ने सच्ची बात कही कि जहन्नुम भेज दिया गया। कहीं से भी कोई बलू नहीं मिलता। सभी अपना-अपना राज छिपाये बैठे हैं और देश भूखों मर रहा है। साहित्यिकों का भी यही हाल है। उनमें से कोई 'सतरंगिणी' लिख रहा है तो कोई 'ग्राम्या', कोई 'प्रेम-प्रलाप' तो कोई 'रसवन्ती'। भला ये चीजें आज के लिखने की हैं?”¹

0.1.6. सम्पर्क में आने वाले प्रमुख साहित्यिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व—

निराला की यथार्थवादी जीवन-दृष्टि के निर्माण में कुछ साहित्यिक और आध्यात्मिक महान् व्यक्तियों का अपूर्व योगदान है। यहाँ उनकी भी थोड़ी चर्चा कर लेना आवश्यक है।

0.1.6.1. साहित्यिक व्यक्तित्व —

सर्वप्रथम निराला अपनी ही प्रिय पत्नी मनोहरा देवी जी के माध्यम से विश्व-कवि तुलसीदास के प्रति आकृष्ट हुये। मनोहरा देवी जी के द्वारा गाया गया तुलसीदास रचित 'श्री रामचन्द्र-कृपालु भज मन हरण भक्त-भक्त दासण' भजन इन्हें बहुत प्रिय

लगा। उन्होंने तुलसी के साहित्य को परखा और समझा। तुलसी के महान् व्यक्तित्व और प्रेरक कर्तृत्व को वे सर्वोपरि मानते रहे।

निराला का जैश्व बंगला-भूमि पर फूला-फला। यहाँ के संस्कारों ने उन्हें आकृष्ट भी किया। बंगलाभाषी कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति इनके मन में विशेष श्रद्धाभावना थी। यद्यपि वे उन्हें कविरूप में श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु उनकी वैभवशीलता (द्वारकानाथ ठाकुर के पौत्र रूप में उनकी सामन्ती स्थिति) पर व्यंग्य करने से भी निरालाजी बाज नहीं आये। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव भी निराला पर अत्यधिक दिखाई देता है।

हिन्दी-साहित्यकारों में से महाकवि तुलसीदासजी के बाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता की ओर निरालाजी की रुचि बढ़ी। गुप्तजी पर आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की कृपा थी। वे उनकी रचनाएँ 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित किया करते थे और स्वयं भी सुधारवादी दृष्टिकोण से कविताएँ लिखा करते थे। निरालाजी द्विवेदीजी से भी बहुत प्रभावित थे। उन्हें आधुनिक हिन्दी का निर्माता मानते थे। द्विवेदीजी अपने समय के प्रबल समाज-सुधारक थे। वे स्त्री-शिक्षा के समर्थक, छुआछूत की भावना के सख्त विरोधी, धार्मिक संकीर्णता और साम्प्रदायिकता से पूर्णतः मुक्त व्यक्ति थे। उनकी इन विशेषताओं ने निरालाजी को उनकी ओर आकृष्ट किया था।

'समन्वय' पत्रिका का मुद्रण पं० बालकृष्ण भट्ट के प्रशंसक सेठ महादेव बाबू के 'बालकृष्ण प्रेस' में होता था। महादेव बाबू एक अच्छे लेखक थे। इनकी रचनाएँ 'इन्दु' और 'अभ्युदय' जैसे पत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं। महादेव बाबू से निरालाजी की भेंट होना स्वाभाविक था। दोनों ने एक-दूसरे के विचारों को समझा और इनमें दिन-प्रतिदिन नैकट्य बढ़ता गया। इसी बीच एक और अच्छे साहित्यकार श्री शिवपूजन सहाय से भी निरालाजी का परिचय हुआ। अब इस साहित्यकार-त्रयी में घनिष्ठता बढ़ती गयी और यह एक साथ बैठकर विचार-विमर्श करने लगी, आलोचना-प्रत्यालोचना में भाग लेने लगी। इसी बालकृष्ण प्रेस में मुंशी नवजादिकलाल से भी निराला की भेंट हुई, जिनके सहयोग से निरालाजी का प्रथम काव्य-संकलन 'अनामिका' के नाम से पाठकों के बीच आया।

इन चारों साहित्यकारों ने विचार-विमर्श के बाद एक हिन्दी-पत्र के प्रकाशन की एक योजना बनाई। हास्य रस के बंगला साप्ताहिक 'अवतार' के अनुरूप 'मत्वाला' नामक पत्र के सम्पादन-प्रकाशन का निश्चय हुआ। दिनांक 26 अगस्त, 1923 ई० को मत्वाला का प्रथम अंक प्रकाशित भी हो गया। इसके विविध अंकों में विभिन्न नामों से निरालाजी की विविध रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। कहीं वे 'निराला' थे, तो कहीं 'गर्गजसिंह वर्मा', कहीं 'साहित्य-शादूल' थे तो कहीं 'जनाव-आली'। आज का उपनाम 'निराला' इनका तत्कालीन छद्म नाम ही था।

जो आज यशस्वी बन गया है। 'मतवाला' को निराला ने कितना गौरव दिया होगा—इसका अनुमान उसके मुखपृष्ठ की दो पंक्तियों की रसवत्ता से ही लगाया जा सकता है। पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

“अमिय गरल सशि सीकर रविकर, राग-विराग-भरा प्याला।

पीते हैं जो साधक उनका, प्यारा है यह 'मतवाला'।”¹

लोगों की आलोचना में निराला की लेखनी को वरदान था। 'मतवाला' में उन्होंने अनेक आलोचनाएँ प्रकाशित कीं, जिससे कई साहित्यकार उनके विरोधी भी बन गये। नये कवियों में से श्री सुमित्रानन्दन पंत से निराला बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने 3 मई, 1924 के 'मतवाला' में 'कविवर सुमित्रानन्दन पंत' शीर्षक से अपना लेख प्रकाशित किया। जिसमें लिखा था—

“हिन्दी में जब से खड़ी बोली की कविता का प्रचार हुआ, तब से आज तक उसमें स्वाभाविक कवि का अभाव ही था। स्वाभाविक कवि अब इतने दिनों बाद आया है और हिन्दी का वह गौरव-कुसुम श्री सुमित्रानन्दन पंत हैं।”²

सन् 1920 में निराला ने स्टीमर में यात्रा करते हुए बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री नागेन्द्रनाथ सेन की बात सुनी और उनसे स्वतः ही प्रभावित हो उठे। श्री गया प्रसाद शुक्ल 'मनेही' की कविताएँ भी उन्हें विशेष रूप से पसंद आती थीं। निराला के साथ सहानुभूति रखने वाले लेखकों में से जयशंकर प्रसाद, विनोदशंकर व्यास, रायकृष्णदास, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० बच्चनसिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मुंशी प्रेमचन्द भी आपके शुभचिन्तक थे। एक बार निराला को छतरपुर में मलेरिया बुखार आ गया, तब प्रेमचन्दजी ने उन्हें पत्र लिखकर सहानुभूति जताई—

“मीयादी बुखार क्या इसीलिए आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो घर दबाऊँ? पहले ही ऐसे कहाँ के मोटे-ताजे थे! ईश्वर आपको चंगा कर दे।”³

शिवपूजन सहाय के माध्यम से निरालाजी का परिचय बाबू गुलाबरायजी से भी हुआ। पं० कृष्णबिहारी मिश्र और श्री दुलारेलाल भार्गव से भी निरालाजी के मधुर सम्बन्ध थे।

हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक विद्वान् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद के विरोधी-से ही थे। उन्होंने निराला के विरोध में एक कविता लिखी। निराला को बुरा लगा। उन्होंने शुक्लजी के विरोध में कवित्त भी लिखा और काशी

1. निराला के काव्य का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ 41।

2. कदाशिल्पी निराला, पृष्ठ 31।

3. कदाशिल्पी निराला, पृष्ठ 32।

विश्वविद्यालय में आयोजित एक सभा में उन पर व्यंग्य भी किया। शुक्लजी से निरालाजी के सम्बन्ध कटु थे, किन्तु इस कटुता ने भी निराला को आगे बढ़ने का साहस दिया।

प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा के प्रति निरालाजी का सहज स्नेह था। वे साहित्यिक रिश्ते में इनकी बहिन थीं। निराला ने अपने प्रमुख कहानी-संग्रह 'देवी' को इन्हें ही समर्पित किया है।

0.1.6.2. आध्यात्मिक व्यक्तित्व—

निराला की यथार्थवादी विचारधारा के निर्माण में कुछ आध्यात्मिक व्यक्तित्वों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अतः यहाँ संक्षेप में निराला को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख आध्यात्मिक सत्पुरुषों की भी जानकारी कर लेना अप्रासंगिक नहीं है।

जब निराला महिषादल में थे, तभी उन्हें स्वामी प्रेमानन्द का सत्संग प्राप्त हुआ था। वे उनसे चर्चा करके बहुत अधिक प्रभावित हुए। स्वामी प्रेमानन्द संन्यास लेने से पूर्व जातिबन्धन में पड़े थे। वे जाति से कायस्थ थे और महिषादल राज्य के चीफ मैनेजर भी कायस्थ थे, अतः जब स्वामी प्रेमानन्द महिषादल आये तो जातिगत प्रेम के कारण मैनेजर ने गर्वपूर्वक एक सभा का आयोजन किया, जिसमें निराला ने भी रामायण-पाठ करके अलौकिक आनन्द प्राप्त किया। सभा पूरी होने पर भोजन प्रारम्भ हुआ, तब स्वामी प्रेमानन्द ने कहा—

“संन्यासी होने पर देश-काल-पात्रता से हम दूर हो गये हैं। हमारा जीवन राम-कृष्णमय है और सभी जनों के लिए है।”¹

स्वामी प्रेमानन्द के इन शब्दों का निराला पर बहुत प्रभाव पड़ा। ब्राह्मण-कायस्थ का भेद निरर्थक है, जातीयता का भाव क्षुद्र मस्तिष्क की उपज है — आदि सत्य उद्भासित हुये।

स्वामी प्रेमानन्दजी ने एक कहानी और सुनाई थी, जिसका भावार्थ था कि संसार के सब कर्मों को करता हुआ जो ईश्वर को याद करता रहता है, वही ईश्वर का सबसे प्रिय भक्त है। इस कहानी से निराला प्रभावित हुए। श्रम के महत्त्व के प्रति उनकी आस्था बढ़ी, निर्धनों के प्रति ईश्वर-कृपा की कथा और संन्यासियों का जगत्-प्रेम-सम्बन्धी भाव उन्हें बड़ा रोचक लगा।

निराला की यथार्थवादी विचारधारा के निर्माण में इस प्रसंग ने अनुपम भूमिका तैयार की है।

सन् 1920 से 1927 तक निराला स्वामी माधवानन्द और स्वामी शारदानन्द जैसी महान् आत्माओं के सम्पर्क में रहे। इस समय के आध्यात्मिक

1.4/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

वातावरण का उन पर सहज प्रभाव पड़ा। स्वामी सारदानन्द महाराज से निराला इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सहज भाव से स्वीकार किया कि “उन्होंने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली। इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयंभू, मत्स्वी, चिरब्रह्मचारी, संन्यासी, महापंडित, सर्वस्व-त्यागी, साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है।”¹

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनन्य शिष्य स्वामी अखण्डानन्द से भी निराला बहुत प्रभावित हुए। वे जीव-सेवा को ब्रह्मसाधना का आधार मानकर ब्रह्मलीन रहा करते थे। निराला को यह साधना अच्छी लगी। उन्होंने उनसे सेवाधर्म का पाठ सीखा। इसी सेवाधर्म और परदुःखकातरता ने ‘पगली’ के प्रति उनकी सहानुभूति को जगाया और ‘देवी’ जैसी यथार्थवादी कहानी की रचना करायी।

सहिषादल में ही स्वामी रामकृष्ण परमहंस के एक और पट्ट शिष्य स्वामी श्यामापद मुखोपाध्याय के पास बैठकर निराला ज्ञानार्जन किया करते थे। वे उनसे वेदान्त की चर्चा करते और स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकें लेकर पढ़ते, जिससे उनका मन स्वामी विवेकानन्द की ओर आकृष्ट हुआ। स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होने के कारण निराला मनुष्य के प्रति अधिक आस्थावान् और संवेदनशील बने। दलित मानवता के प्रति निराला की करुणा के पीछे उस वेदान्त दर्शन का ही प्रभाव परिलक्षित होता रहा है।

0.2. युगीन परिवेश—

कोई भी साहित्यकार अपने युगीन परिवेश से अप्रभावित नहीं रहता है। युगीन परिवेश उसकी विचारधारा के निर्माण में पर्याप्त भूमिका निभाता है। निराला के यथार्थवादी दृष्टिकोण के निर्माण में तदयुगीन परिवेश का भी महत्वपूर्ण योगदान है, अतः यहाँ उनके युगीन परिवेश की चर्चा भी अपेक्षित है।

0.2.1. राजनीतिक परिवेश—

आधुनिक युग में भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि सन् 1757 ई० में अंग्रेजों के बंगाल और 1803 ई० में दिल्ली जीतने से प्रारम्भ होती है। विजित प्रदेशों में अंग्रेजों ने मनमाने ढंग से अपना शासन और आर्थिक व्यवस्था लागू कर दी। सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के परिणामस्वरूप देश में प्रथम राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ। सभी देशी राजाओं के संगठनात्मक शक्ति और प्रयास के अभाव में यह आन्दोलन पस्त हो गया। भारत में रानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र और लार्ड मेकाले की शिक्षा-नीति के प्रादुर्भाव से भारतीय जन-जीवन में एक नवीन परिवर्तन हुआ। 1885 ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से देश के प्रशासन में भारतीयों के

योगदान की शुरुआत हुई। इस बीच बालगंगाधर तिलक ने “स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है”—का गुरुमन्त्र देश को दिया। सन् 1905 में बंग-भंग कानून से यह स्वाधीनता की भावना और भी बलवती हो गई और इसने अनेक क्रान्तिकारी देशभक्तों का निर्माण किया। सन् 1914 ई. में प्रथम विश्व-युद्ध के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति और जन-जीवन में अधिकांश परिवर्तन हुए। इसमें भारतीय सैनिकों ने भी सक्रिय भाग लिया। इस युद्ध से भारतीय स्वाधीनता की भावना और भी उग्र बन गयी। वस्तुतः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद देश में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुये। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं—

“हिन्दू जाति के ताना भेद-प्रभेदों के बीच एक संगठित जातीयता का निर्माण, हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई आदि विभिन्न धर्मानुयायियों में एक अन्तर्व्यापी मानवसूत्र का अनुसन्धान, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच खाइयाँ पाटना—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अपने देश के सामने ये प्रधान प्रश्न थे।”¹

सन् 1919 में रौलट-एक्ट के पास होने से भारतीयों के मन पर सहसा तुषारापात हुआ। जलियाँवाला बाग के पाशविक हत्याकांड का परिणाम और भी भयंकर सिद्ध हुआ। महात्मा गाँधी के सक्रिय सहयोग से असहयोग आन्दोलन तथा स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। असहयोग आन्दोलन में सभी विदेशी वस्तुओं, नौकरियों, शिक्षा-संस्थाओं आदि का बहिष्कार किया गया। गाँधीजी के इस आन्दोलन से असंतुष्ट कुछ नेताओं ने ‘स्वराज्य पार्टी’ की स्थापना की। वास्तव में सन् 1918 से 1920 का काल भारतीय राजनीति में युगांतर-काल है। सन् 1920 से 1930 ई० के दरम्यान अंग्रेजों की फूटपरस्ती-नीति का कुचक्र खूब साकार हुआ और हिन्दू-मुस्लिम का साम्प्रदायिक संघर्ष भी काफी जोरों से छिड़ा। सन् 1930-35 ई० में कमीशन ऐक्ट और संधियाँ बनीं और फिर पाकिस्तान की माँग की गई। 1942 ई० में गाँधीजी के नेतृत्व में ‘भारत छोड़ो’ का सबल देश-व्यापी आन्दोलन छिड़ा। इस बीच भी अनेक राजनीतिक उतार-चढ़ाव आये।

0.2.2. आर्थिक परिवेश—

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम की विफलता से अंग्रेजी सत्ता ने भारत में अधिक दृढ़ता ग्रहण कर ली। उसकी नीति भारत की आर्थिक पंगुता की नीति थी। यही कारण है कि अंग्रेजों ने कभी भी अपने प्रयासों से भारत में उद्योग-धन्धों की स्थापना नहीं की। उन्होंने श्रमिकों तथा उत्पादन-केन्द्रों को कम महत्व दिया और नौकरशाही को अधिक प्रश्रय प्रदान किया। परिणामतः भारत की आर्थिक दशा दयनीय होती चली गई। भारत नाम-मात्र के लिए कृषि-प्रधान देश रह गया। अंग्रेजों ने एक ओर देशी उद्योग-धन्धों का नाश किया और दूसरी ओर विदेशी पूँजी से भारत में नये उद्योग-धन्धे स्थापित किये। सर्वत्र महंगाई, अकाल,

16/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

टैक्स का सामना करना पड़ा। किसानों को मालगुजारी के बोझ से दबाकर अंग्रेजी शासन ने ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को ही नष्ट कर दिया। प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के पश्चात् तो भारत की आर्थिक दशा और भी अधिक दयनीय हो गयी। इससे समाज का सामान्य व्यक्ति ही नहीं, साहित्यकार भी बुरी तरह प्रभावित हुआ। कृषकों व श्रमिकों की दुर्दशा के यथार्थ चित्र महात्मा गांधी और डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की आत्मकथाओं में मिलते हैं।

0.2.3. सामाजिक परिवेश—

इस समय का सामाजिक परिवेश भी द्वैतभाव से ग्रस्त था। एक ओर राज्यभक्ति के फलस्वरूप वैभवविलास में आकण्ठमग्न कुछ अभिजातवर्गीय थे, दूसरी ओर अभावों की तारकीय यन्त्रणा में छटपटाती भारत की अधिकांश जनता। अनेक सामाजिक व नैतिक रूढ़ियों ने प्रगति का मार्ग अवरोध कर रखा था। विवाह के क्षेत्र में अनमेल विवाह, बाल-विवाह, सतीप्रथा, दहेज-प्रथा, नारी-विषयक दृष्टिकोण में नारी को भोग्यामात्र समझना, युवक-युवतियों की स्वतन्त्रता और स्वेच्छा-चारिता पर अंकुश, धार्मिक दृष्टि से समुद्र-यात्रा पर प्रतिबन्ध, उपासना के बाह्याडम्बरों पर बल, सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में अस्पृश्यता, जातिगत कुलीनता का दंभ, वैचारिक संकीर्णता एवं परम्परावादिता आदि तत्त्व प्रबुद्ध व मुक्तिकामी युवा जन-मानस को चुनौती दे रहे थे। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ व जागरूक व्यक्तित्व इस दिशा में सक्रिय हुए। अस्पृश्यता के उन्मूलन में गांधीजी का योगदान अविस्मरणीय है। नवीन शिक्षा एवं पाश्चात्य प्रभाव ने जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बौद्धिकता एवं वैचारिक जागरूकता उत्पन्न की। समाज का एक उच्चशिक्षा-प्राप्त वर्ग स्वच्छन्द चिन्तन और व्यवहार की ओर उन्मुख हो रहा था। छायावाद-युग में सभी दृष्टिकोणों से भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों, धर्मों और समाजों की तुलना हुई। साहित्य में यह तुलनात्मक दृष्टिकोण सर्जन और आस्वादन के नये क्षितिज ढूँढ़ने लगा। स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार का कार्य वेग से आरम्भ हुआ। युग-युग की बन्दिनी नारी घुटन के प्रतीक परदे को फाड़कर मुक्त पवन में आई। इस क्षेत्र में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसायटी आदि का कार्य उल्लेखनीय है। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी भारतीय नवयुवकों के लिए उच्च पदों के द्वार बन्द होने की निराशा और एक पराधीन रूढ़ि-जर्जर देश के निवासी होने की कुंठा के बावजूद स्वतन्त्रता की आकांक्षा नवयुवकों में बलवती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं निराला के यथार्थवादी दृष्टिकोण में उनके व्यक्तित्व और युगीन परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान है। आजन्म संघर्षमय, दुःखद और अभावपीड़ित जीवन ने तथा युगीन परिवेश के कटु अनुभवों ने निराला को यथार्थवादी बन जाने के लिए मजबूर कर दिया।

प्रथम अध्याय

यथार्थवाद : जन्म, स्वरूप एवं निकटस्थ सन्दर्भ

1'0 निराला के कथा-साहित्य में यथार्थवाद की खोज करने से पूर्व हमें यथार्थवाद को समझ लेना अति आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना साहित्य में उसकी खोज करना एक बुनियादी भूल होगी। यथार्थवाद-विषयक मत परस्पर काफी प्रमानता लिए हुए हैं। इसी संदर्भ में यथार्थवाद के अनेक भेद-प्रभेद भी व्यक्त हुए हैं। ऐसी स्थिति में यथार्थवाद का स्वरूप निश्चित करने से पूर्व उसे भलीभाँति समझ लेना और भी आवश्यक है। इसलिए सर्वप्रथम यहाँ यथार्थवाद का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

1'1. यथार्थवाद का जन्म—

यथार्थवाद का जन्म किसी वच्चे का जन्म नहीं है जिसकी निश्चित तिथि और निश्चित समय बताया जा सके। यह तो एक साहित्यिक विचारधारा है जो शनैः शनैः ही अपना विशिष्ट सैद्धान्तिक रूप धारण कर सकी है। इसका जन्म कब और कैसे हुआ—इसके लिए हमें भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-परम्पराओं का सिंहावलोकन करना होगा।

1. 1. 1. भारतीय साहित्य-परम्परा—

भारतीय साहित्य में यद्यपि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक आदर्श की ही प्रमुखता रही, परन्तु साथ ही यथार्थ की भी कभी उपेक्षा नहीं की गई। भरत मुनि ने नाटक का सीधा सम्बन्ध लोक-जीवन से माना है। संस्कृत के काव्याचार्यों के एक विशेष वर्ग ने स्वभावोक्ति अलंकार को काव्य का मुख्य गुण माना है—

“स्वभावोक्तिः रसश्चारुः तथावत् वस्तुवर्णनम् ।”

अर्थात् किसी वस्तु का यथावत् या यथार्थ चित्रण सरसता है।

वीरगाथा काल में भारत की सामूहिक शक्ति का ह्रास और राजाओं के परस्पर मनोमालिन्य के कारण गृहयुद्ध तथा यवनों के प्रवेश का वर्णन यथार्थवाद से सम्बन्ध रखता है।

भक्तिकाल में यथार्थवाद की धारा स्पष्ट दिखाई देती है। इसीलिए कुछ साहित्यिकों का मत है कि हिन्दी में यथार्थवाद का प्रादुर्भाव भक्तियुग से हुआ। समस्त ज्ञानाभ्यासी संत कवियों ने अपनी वाणियों में तत्कालीन समाज के दोषों, विषमताओं

और दुर्व्यवस्थाओं का यथार्थ चित्रण किया है। उनके उपदेशों में यथार्थता कूट-कूट कर भरी है। प्रतिनिधि संत कवि कबीरदासजी की यह प्रसिद्ध साखी द्रष्टव्य है—

“केसन कहा बिगारिया, जो मूड़ सौ बार।

मनहिं क्यों ना मूड़िये, जामै विषय विकार ॥¹”

सूरदास के उद्धव-गोपी-संवाद और कृष्ण-बाल-वर्णन के पदों में भी यथार्थता का दर्शन होता है। तुलसीदास के कलियुग-वर्णन में समाज का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। देखिये—

“वरन धर्म नहिं आश्रमचारी। श्रुतिविरोधरत सब नरनारी ॥

द्विज श्रुतिबंचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम-अनुशासन ॥

मारग सोइ जा कहुं जोइ मावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा ॥

मिथ्यारंभ दंभ रत जाई। ता कहुं संत कहइ सब कोई ॥

सोइ सयात जो परधन-हारी। जो कर दंभ सो बड आचारी ॥

जो कहुं भूठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥

निराचार जो श्रुति-पथ त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥

जाके नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥”²

कितना यथार्थ चित्रण है ! रीतिकाल में भी अन्योक्तियों का आश्रय लेकर कवियों ने यथार्थता को अव्यक्त रूप से स्थान देने की चेष्टा की है। कविवर बिहारीलाल का निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है—

“स्वारथु सुकृत न थमु वृथा, देखि बिहंग विचारि।

बाज पराये पानि परि, तू पच्छीनु न मारि ॥³”

वीररस के प्रसिद्ध कवि भूषण जब चोटी, जनेऊ और मन्दिर के विनाश की बात कहते हैं तो मुसलमानों के अत्याचार का यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है और हिन्दू-जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं के निर्भीकता, स्पष्टवादिता और यथार्थता विशेष गुण हैं। समाज, संस्कृति, धर्म और सरकार सभी पर ‘अंग्रेजस्तोत्र’ आदि निबन्धों तथा ‘अंधेरनगरी’ आदि नाटकों में उन्होंने कटु व्यंग्य किये हैं। भारतेन्दुकालीन अन्य लेखकों में भी यह यथार्थवाद स्पष्ट दिखाई देता है। भारतेन्दुयुग के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग आता है। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था; इसलिए अकाल, अन्नाभाव, भुखमरी आदि के यथार्थ चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किये। ‘द्विवेदी काव्य-माला’ में संकलित ‘भारत-दुर्भिक्ष’ शीर्षक कविता में लिखा है—

1. कबीर ग्रंथावली, प्रेम को अंग, 12

2. रामचरितमानस, उत्तरकांड, छन्द संख्या 98क

3. बिहारी-सतसई, दोहा 300

“गली-गली कंगाल पेट पर हाथ दोऊ धरि धावै ।
अन्न-अन्न पानी-पानी कहि शोर प्रचंड मचावै ॥
बालक युवा जरठ नारी-नर भूख-भूख कहि गावै ।
अविरल अश्रुधार आँखनि तें बारम्बार बहावै ॥”

इस युग के अन्य साहित्यकारों की प्रवृत्ति भी सुधारवादी थी, परन्तु उसके मूल में यथार्थवादी दृष्टिकोण अंतर्निहित था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ‘भारत-भारती’ में यथार्थवादी दृष्टिकोण मुखरित हो उठा है। गुप्तजी ने इसमें भारतीय जीवन के अनेक यथार्थ रूपों को चित्रित किया है। ‘किसान’ में कृषकों का यथार्थवादी चित्र देखिये—

“कड़ी धूप में तीक्ष्ण ताप से तनु है जलता,
पानी बनकर नित्य हमारा रुधिर निकलता ।
तदपि हमारे लिए यहाँ शुभ फल कब फलता,
रहता सदा अभाव, नहीं कुछ भी वश चलता ॥”

रीतिकालीन कविता की भाँति ही छायावादी कविता लोक के उस पार की वस्तु रही, फलतः छायावादी युग में यथार्थवादी प्रगति अवरुद्ध-सी हो गई। परन्तु प्रगतिवाद में पुनः यथार्थवादी आधार पर मजदूर, दीन-दुखी, शोषित वर्ग तथा पीड़ित समाज का चित्रण हुआ है। निरालाजी की ‘वह तोड़ती पत्थर’ और ‘भिक्षुक’, पतंजली की ‘होली का हुड़दंग’, भगवतीचरण वर्मा की ‘मैसागाड़ी’, दिनकरजी की ‘गुरुक्षेत्र’, रामचन्द्र वर्मा की ‘गाँव की हाट’, भगवतीप्रसाद तिवारी की ‘प्राण-पूजा’ आदि अनेक रचनाएँ इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साहित्यिक अभिव्यक्ति के दोनों छोरों पर यथार्थ और आदर्श सदा से ही विद्यमान रहे हैं। अतः यथार्थवाद की जन्म की निश्चित तिथि बताना प्राचीन साहित्य-परम्परा के अज्ञान का प्रदर्शन होगा।

परन्तु इस बात को मानने में भी किसी को संकोच न होगा कि भारतवर्ष में पिछले कुछ दशकों में जिस यथार्थवाद का अभ्युदय और विकास हुआ है उसकी मूल प्रेरणा भारतीय नहीं, बरन् पाश्चात्य है।

1.1.2 पाश्चात्य साहित्य-परम्परा—

सन् 1826 के आस-पास फ्रांस में इसकी चर्चा प्रारम्भ हुई। ‘मक्यूरै काफायज’ में एक प्रमुख लेखक ने लिखा था—

“यह निरन्तर विकसित होने वाला साहित्य-सिद्धान्त महान् कृतियों का अनुकरण करने के बजाय प्रकृति-प्रदत्त मूल स्रोतों का अनुकरण करेगा। इसे यथार्थवाद कहा जायेगा। कुछ संकेतों के आधार पर इस बात को सिद्ध किया जा सकता है कि यह उन्नीसवीं शताब्दी का साहित्य होगा और यथार्थ रूप में सत्य को व्यक्त करेगा।”

20/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

सन् 1833 ई० के आसपास गुस्टाव प्लांश ने इस शब्द को नया रूप दिया और इसे वर्णन की यथातथ्यता का सूचक माना। सन् 1846 ई० में बाल्जाक को यथार्थवादी कहा गया। इनके उपन्यासों में इस साहित्यिक यथार्थवाद का सूत्रपात ही नहीं, बल्कि महत्वपूर्ण विकास भी हो चुका था। चंद वर्षों बाद ही अर्थात् लगभग 1850 ई० में कोर्वे ने जनजीवन पर आधारित अपने चित्रों का प्रदर्शन किया जिनका बड़ा विरोध हुआ। इनके समर्थन में उपन्यासकार जम्फ्लुअरी ने 1857 में एक लेख लिखा, जिसे 'दि रियलिज्म' शीर्षक से प्रकाशित किया गया।

इस प्रकार यथार्थवाद के जन्म की निश्चित तिथि के भगड़े में न पड़कर हम यह मान सकते हैं कि लगभग 19वीं शताब्दी के मध्य में यथार्थवाद, सिद्धान्त और साहित्यिक अभियान के रूप में यूरोप के सम्मुख आया। शनैः शनैः उसने अनेक रूप प्रकट किये और आश्चर्यजनक उन्नति की।

1.2. यथार्थवाद का स्वरूप—

1.2.0 यथार्थवाद ने अपने जन्म से लेकर अब तक विविध रूप धारण करके चमत्कारिक उन्नति की है। अतः उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। फिर भी विभिन्न पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यहाँ हम उनमें से कतिपय की परिभाषायें उद्धृत कर रहे हैं। तदनन्तर उनके आधार पर यथार्थवाद को समझने की चेष्टा करेंगे।

1.2.1. पाश्चात्य मत—

पाश्चात्य विद्वान् कजामियाँ का कहना है—

“यथार्थवाद साहित्य में एक पद्धति (Method) नहीं, बल्कि एक विचार-धारा (Tendency) है।”¹

स्टीवेन्सन का कहना है—

“यथार्थवाद का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अल्पांश भी सम्बन्ध नहीं रखता, बल्कि उसका सम्बन्ध केवल रचना की कलात्मक शैली से है।”²

एच. लेविन भी लिखते हैं—

“साहित्य में यथार्थवाद उस पद्धति को कहते हैं, जिसका उद्देश्य जीवन में सभी वस्तुओं का पूर्ण निष्ठात्मक चित्रण एवं प्रकृति का पुनः प्रस्तुतीकरण है। यह प्रवृत्ति सौन्दर्य के हेतु, वास्तविकता के आदर्शीकरण को, अभिव्यंजना के शैलीकरण को और आध्यात्मिक तथा अतिप्राकृत विषयवस्तु के निर्वाह को अस्वीकारती है।”³

शिपले भी 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर' में लिखते हैं—

1. पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की भूमिका, डॉ० मदन केवलिया, पृष्ठ 212

2. वही, पृष्ठ 212

3. वही, पृष्ठ 212

“साहित्यिक समालोचना में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के विरोध में उन साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाता है, जो वास्तविक जीवन की अनुकृति में निर्मित होती हैं और जो अपनी विषय-वस्तु वास्तविक जीवन से ग्रहण करती हैं। यथार्थवादी लेखक वह होता है, जो वस्तुमुखी दृष्टिकोण धारण करता है और अपनी रचना में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं एवं विचारों को सन्निविष्ट न कर अपनी विषयवस्तु का निर्वाह फोटोग्राफिक और विवरणात्मक शैली में करता है।”

1.2.2. भारतीय मत—

अब कुछ भारतीय विद्वानों के विचार भी देख लेते हैं। पश्चात् इन सभी पर एक साथ विचार करेंगे।

प्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबराय ने यथार्थ के सम्बन्ध में लिखा है—

“यथार्थ वह है, जो नित्यप्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, सुख-दुःख की घूँप-छाँह का मिश्रण रहता है। यह सामान्य भावभूमि के समतल पर रहकर वर्तमान की वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएँ हैं, जो उसकी पहुँच से बाहर हैं, वह संसार की कलुष-कालिमा पर भव्य आवरण नहीं डालना चाहता। वह स्वर्ग को भी मिट्टी के कणों से मिश्रित देखना चाहता है।”¹

महान् साहित्यखण्डा श्री जयशंकर प्रसाद के अनुसार—

“यथार्थवाद जीवन की अभिव्यक्ति और आदर्शवाद अभावों की पूर्ति है।”

तथा—

“यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है—लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से तात्पर्य है—साहित्य के माने हुए सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुःख और अभावों का वास्तविक उल्लेख।”²

डॉ० मंगीरथ मिश्र ‘अध्ययन’ में लिखते हैं कि—

“प्रगतिवाद (यथार्थवाद) हमारे अन्तर्गत सामाजिक और नैतिक चेतना जागृत करता है। समाज के दुःखों की ओर हमारा ध्यान ले जाता है और जीवन-समस्याओं को, सामाजिक विषमताओं को विकराल रूप में जैसा हम नित्य के जीवन में देखते हैं, उपस्थित करता रहता है।”

1. हिन्दी साहित्य के बाद, डॉ० द्वारकाप्रसाद मीतल, पृष्ठ 234

2. साध्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 120

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार—

“यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक्-पृथक् सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुजगत् से है। यथार्थवाद अपने को वैज्ञानिक दृष्टि-सम्पन्न बनाता है। वह सत्य का खोजी हुआ करता है और उसका सत्य वही है, जिसे वह अपनी इन्द्रियों की सहायता से जान पाता है। यथार्थवाद किसी लक्ष्य-विशेष को महत्त्व न देकर, जो कुछ अनुभव में आता है और बुद्धि से सिद्ध होता है, उसी का हामी है।”¹

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि—

“कला के क्षेत्र में यथार्थवाद एक ऐसी मानसिक वृत्ति है, जो निरन्तर अवस्था के अनुकूल परिवर्तित और रूपायित होती रहती है। यथार्थवाद का मूल सिद्धांत है—वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना।”²

1.2.3. समन्वय व समालोचन—

अब हम इन भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं के आधार पर यथार्थवाद का स्वरूप समझने का प्रयास करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ एक विशेष प्रकार के यथार्थवाद की ओर संकेत करती हैं। यथार्थवाद के जन्म के कारणों पर विचार करते समय निवेदन किया गया था कि यथार्थवाद का जन्म पश्चिम में स्वच्छन्दतावाद के विरोध में हुआ था, क्योंकि पाश्चात्य साहित्य में स्वच्छन्दता अत्यधिक खटकनेवाली हो चली थी। अतः यथार्थवाद एक प्रतिक्रियात्मक वैचारिक आन्दोलन है, जिसने प्रारम्भ से लेकर आज तक विविध रूप धारण किये हैं। अतः समय-समय पर विद्वानों ने अपने-अपने हिसाब से उसकी परिभाषाएँ दी हैं। पाश्चात्य विद्वान शिपले की यथार्थवाद की जो परिभाषा ऊपर उद्धृत की गई है, उसमें वस्तुमुखी दृष्टिकोण द्वारा वास्तविक जीवन का फोटोग्राफिक विवरण हीन शैली में व्यक्त करना बताया गया है। परन्तु ऐसा यथार्थवाद साहित्यिक नहीं है; क्योंकि साहित्य जीवन का दर्पण ही नहीं, दीपक भी होता है।

यथार्थवादी साहित्यिक व्यवस्था में यथार्थ जीवन और उसके प्रत्यक्ष अनुभवों का विशेष महत्त्व है—यह तो निर्विवाद है, किन्तु संसार के यथार्थवादी साहित्य को देखने से यह पता चलता है कि आदर्श और काल्पनिक अनुरंजन सदा यथार्थ के साथ मिश्रित होने के लिए सचेष्ट रहते हैं। यथार्थवादियों की कृतियों में यह सम्मिश्रण न केवल मिलता है, अपितु अत्यन्त आकर्षक भी प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ हम बाल्जाक और प्रेमचन्द के उपन्यासों को ले सकते हैं। इसी को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते हैं। तथा यही यथार्थवाद साहित्यिक है। अन्यथा जिसमें केवल जीवन के

1. आधुनिक साहित्य, पृष्ठ 420

2. डॉ० भद्रन केवलिया : पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ 213

गहित पक्ष का ही कुत्सित चित्रण प्रस्तुत किया जाता हो, वह निन्दनीय है, जीवन के लिए नहीं है।

इस संदर्भ में प्रसिद्ध समालोचक बाबू गुलाबरायजी के महत्वपूर्ण विचार द्रष्टव्य हैं—

“वास्तविक यथार्थवाद तो गुण और दोषों को उचित अनुपात में दिखाना है, किन्तु प्रायः लोग यथार्थवाद के नाम पर मनुष्य की बुराइयों और दुर्बलताओं का उद्घाटन करते हैं। इसमें भी यदि बुराइयों का उद्घाटन इसलिए किया जाता है कि उनके प्रति ध्यान आकर्षित कर लोगों को सुधार की ओर प्रवृत्त किया जाय तब तो वह क्षम्य हो जाता है, किन्तु जब बुराइयों का उद्घाटन लोगों की कुरुचि से लाभ उठाने अथवा उसके आधार पर उपन्यास की बिक्री बढ़ाने अथवा मानव समाज से अपना बदला लेने के लिए किया जाता है, तब वह निन्द्य हो जाता है।”¹

अन्य भी अनेक भारतीय आधुनिक साहित्यकारों ने इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं जिनमें जीवन की केवल कुरूपताओं का चित्रण करने वाले यथार्थवाद की निन्दा की गयी है। डॉ० कृष्णलाल हंस स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं—

“केवल दोषदृष्टि से यथार्थ चित्रण यथार्थवादी चित्रण नहीं हो सकता, वह ‘नग्नवादी’ चित्रण ही कहा जा सकता है। यथार्थवादी के नाम पर यूरोपीय और भारतीय भाषाओं में भी साहित्य सामने आया, वह अधिकांशतः मानव-जीवन की विद्रूपताओं, कुरूपताओं और हीनताओं से ही पूर्ण है। इसे यथार्थवादी लेखकों और कवियों की मानव-जीवन के सम्पूर्ण रूप और उसकी समस्त जीवन-परिस्थिति के प्रति ईमानदारी नहीं कहा जा सकता। जीवन के सुन्दर और असुन्दर दोनों अंशों का यथार्थ चित्रण ही ‘यथार्थवादी चित्रण’ कहा जा सकता है।”²

समझने की बात यह है कि साहित्य प्राणिमात्र के हित के भाव से सहित होता है, अतः किसी भी साहित्यिक वाद को उसके बुनियादी उद्देश्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, उसे उसका पूरक ही होना चाहिए।

‘यथार्थ’ शब्द का शब्दकोशीय अर्थ केवल ‘ज्यों का त्यों’ या ‘यथावत्’ ही नहीं है, अपितु उसमें ‘औचित्य’ का भाव निहित है। ‘यथार्थ’ का अर्थ है—यथोचित।³ इसलिए उचित यथार्थवादी चित्रण वही है, जिसमें औचित्य का भाव निहित हो। यह तो सही है कि यथार्थवाद कल्पना करके आदर्श के आकाश में नहीं उड़ता है, किन्तु यह भी सच है कि यथार्थ में भी आदर्श के समान ही जीवन का संदेश निहित होता है, उसमें भी औचित्य का भाव गभित होता है। यथार्थवादी साहित्य प्रकल्याणकारी नहीं हो सकता है, क्योंकि वह भी साहित्य का एक भाग

1. काव्य के रूप, पृष्ठ 182

2. समीक्षाशास्त्र, पृष्ठ 685

3. (क) वामन शिवराम जाधे : संस्कृत-हिन्दी कोश, संस्करण 1984 ई०, पृष्ठ 824

(ख) रामचन्द्र वर्मा : संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर संस्करण 1981 ई०, पृष्ठ 840

विशेष है। अतः सम्पूर्ण साहित्य में जिस प्रकार उदात्त भावनाओं को स्थान है, उसी प्रकार उनके एक भाग विशेष यथार्थवादी साहित्य में भी उदात्त भावनाओं को महत्वपूर्ण स्थान है। अभिप्राय यह है कि यथार्थवादी साहित्य, साहित्य पहले है, अतः उसे साहित्य के लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए।

यही बात श्री भगवतीचरण वर्मा कहते हैं—

“साहित्य और कला का भाग होने के कारण आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों में ही कुरूपता को कोई स्थान नहीं, असद् और अकल्याण से दोनों ही परे हैं। वस्तुतः प्रत्येक यथार्थवाद में मानव की उदात्त भावना का समावेश होना चाहिये, क्योंकि इसी उदात्त भावना में सद् और कल्याण है। और प्रत्येक आदर्शवाद में सहनशीलता होनी चाहिये, शाश्वत सत्य और मान्यताओं पर ही उसकी स्थापना होनी चाहिए।”¹

शिल्पविधान की दृष्टि से यथार्थवाद के अन्तर्गत देश-काल का उपयोग कैसे होता है—यह प्रश्न भी यहाँ विचारणीय है।

वैसे तो यथार्थवादी अभिव्यक्ति में तात्कालिकता और निकटवर्तित्व ही होता है, क्योंकि देश और काल की अपेक्षा जो कुछ हमारे निकट है, वह हमारे मन के लिए सरलता से यथार्थ बन जाता है। इसके अतिरिक्त दूरस्थ और भूतकालिक पदार्थों और व्यक्तियों के यथार्थ की प्रतीति कठिनाई से होती है। इसलिए अधिकांश यथार्थवादी साहित्य समसामयिक परिस्थितियों और घटनाओं को ही चित्रित करता है। उसकी पृष्ठभूमि भी ऐसी होती है, जिससे ग्राम पाठक भलीभाँति परिचित होता है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि दूरस्थ और भूतकालिक पदार्थों और व्यक्तियों का यथार्थ चित्रण नहीं ही होता है। कुछ लोग ऐसे चित्रण को स्वच्छन्दतावाद कहते हैं, परन्तु यह उचित नहीं है। दूरस्थ और भूतकालिक पदार्थों और व्यक्तियों का भी यथार्थ चित्रण हो सकता है और होता है। विश्व साहित्य में ऐसे अनगिनत ग्रन्थ हैं, जिनमें बीते हुए युगों का चित्र खींचा गया है, उनको साकार बनाने का प्रयास किया गया है। हाँ, इतिहास की यथार्थ अभिव्यक्ति में कुछ बातें अवश्य अपेक्षित होती हैं। लेखक को इतिहास का गहरा ज्ञान होना चाहिए। कम से कम जिस युगविशेष से उसका सरोकार है, उसके इतिहास-ज्ञान में तो उसे पारंगत होना ही चाहिए। उसमें हल्केपन से काम नहीं चलेगा। छोटे-बड़े विवरणों, किंवदन्तियों, लोकश्रुतियों, तत्कालीन जनता के व्यवहारों, अभिरुचियों, अंधविश्वासों आदि सभी का अध्ययन निश्चितरूपेण अपेक्षित होगा। इन साधनों की सहायता

से प्रतिभावान् परिश्रमी लेखक जो प्राचीन और दूरस्थ है, उसे भी मानस-प्रत्यक्ष बना देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वीती हुई बात हमारे लिए अपरिचित नहीं है, वह स्फुट होकर हमारे सामने साकार हो उठी है। इस प्रकार के यथार्थवाद को ऐतिहासिक यथार्थवाद कहा जा सकता है। वैसे 'ऐतिहासिक यथार्थवाद' नाम उचित नहीं है, क्योंकि यहाँ इतिहास तो सिर्फ विषय के स्थान पर है।

यथार्थवादी कलाकार सत्य का उपासक होता है। वास्तव में जो कुछ नित्य हमारे सामने घटता है, वही सत्य है, यथार्थ है, जीवन और जगत का वास्तविक तथ्य वही है। वह उस वास्तविक सत्य से परे स्वर्णिम लोक में विचरने की कामना नहीं करता।

यथार्थवाद में हम अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं। उसमें वे गुण और अवगुण समाविष्ट रहते हैं, जिन्हें हम जन-साधारण में देखते हैं। 'गोदान' के होरी में हम समाज का यथार्थ चित्रण देखते हैं, अतः उसमें वे भी गुण और अवगुण मौजूद हैं जो जनसाधारण में मिलते हैं। इस प्रकार यथार्थवादी साहित्य की दृष्टि जन-साधारण की ओर होती है।

यथार्थवादी साहित्य दुःखपूर्ण मानवता को स्पर्श करने वाला होता है। उसमें अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं। यथार्थवादी, वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव की ओर दृष्टिपात करता है और वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति के पीड़न, कष्ट और अपराधों से समाज को परिचित कराने का प्रयत्न करता है।

यथार्थवादी साहित्य में अपराधों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर सामाजिक परिवर्तन की, सामाजिक सुधार की भावना अन्तर्निहित रहती है और इसके मूल में वेदना की निवृत्ति की भावना रहती है।

जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, यथार्थवादी लोक-प्रचलित भाषा को अपनाने के पक्ष में है। क्योंकि यथार्थवादी रचनाओं में 'स्थानीय वातावरण' का निर्माण करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। प्रकृति के प्रत्यक्ष स्वरूप, प्रचलित प्रथाओं और विश्वासों, जनसाधारण के कार्य और संवाद आदि की सहायता से स्थानीय वातावरण का निर्माण होता है, जिसमें जनसाधारण में प्रचलित बोलियों का विशेष योगदान होता है। यथार्थवादी उपन्यास और नाटकों में जनबोलियों का समावेश निःसंकोच किया जाता है। क्योंकि वे यथार्थ जीवन में व्यवहृत होते हैं और उनके समावेश से साहित्यिक रचनाओं में यथार्थ की प्रतीति अधिक गहराई से होती है। प्रायः निम्नवर्ग का संवाद जनबोलियों के माध्यम से कराया जाता है और शिक्षित व सम्य लोग परिष्कृत भाषा बोलते हैं।

यथार्थवादी साहित्यिक निरूपण में सूक्ष्म एवं नगण्य तथ्यों और तिथियों द्वारा चित्रण को पूर्ण विश्वसनीय बनाया जाता है, पाठक का विश्वास जगाया जाता

है। इसीलिए सभी यथार्थवादी लेखकों ने किसी स्थान-विशेष, कालविशेष, वर्गविशेष की बहुत-सी छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने निरूपण को सफल बनाया है। इसलिए यथार्थवादी लेखक को सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा साधारण तथ्यों के उपयोग में सक्षम होना परमावश्यक होता है। विवरण उसके प्रमाण है और प्रमाण द्वारा ही आस्था सुदृढ़ होती है। सुदृढ़ आस्था के लिए ही यथार्थवादी लेखक प्रमाण के अन्य साधनों— पत्र, दैनन्दिनी के पन्ने आदि— को भी काम में लाता है। इस प्रकार का दस्तावेजी सवृत डाक्यूमेण्टेशन यथार्थवादी निरूपण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है और अनेक यथार्थवादी उपन्यास और कहानियों में उनका सफल उपयोग किया गया है।

1.3. यथार्थवाद के घटक तत्त्व—

अब यथार्थवाद के उक्त निर्धारित स्वरूप के आधार पर निष्कर्ष रूप में कुछ तत्त्वों या विशेषताओं की ओर संकेत कर देना अनुपयोगी न होगा। यथार्थवाद के कुछ प्रमुख तत्त्व निम्न प्रकार हैं—

1.3.1. वस्तुगत घटक तत्त्व—

- (1) यथार्थवाद जीवन का यथार्थ चित्रण करता है।
- (2) यथार्थ चित्रण औसत मानव का चित्रण होता है, जिसमें गुण-दोष, आशा-निराशा आदि सभी का तटस्थ भाव से चित्रण किया जाता है, परन्तु ध्यान रहे उसमें वेदना की निवृत्ति का भाव अवश्य होता है।
- (3) यथार्थवाद हमारा ध्यान समाज के दुःखों की विकरालता की ओर ले जाता है और हमारे अन्दर सामाजिक और नैतिक चेतना जागृत करता है।
- (4) यथार्थवादी साहित्य के पात्र दैवी शक्ति-सम्पन्न या अलौकिक नहीं होते हैं, अपितु समाज के विविध क्षेत्रों से चुने हुए जनसाधारण ही होते हैं, जो मानवीय सबलताओं और दुर्बलताओं से युक्त होते हैं। उन्हें हम अपने परिकर में अवश्य पा लेते हैं।
- (5) यथार्थवादी अभिव्यक्ति में प्रमुख रूप से तात्कालिकता और निकट-वर्तित्व होता है, परन्तु प्रतिभावान लेखक हो तो भूतकालिकता और दूरस्थ पदार्थों, व्यक्तियों और घटनाओं का भी यथार्थ चित्रण किया जा सकता है।
- (6) साहित्यिक यथार्थवाद साहित्य के उद्देश्य का विध्वंसक नहीं, अपितु पूरक होता है; इसीलिए वह जीवन के कुत्सित पथ का ही चित्रण नहीं करता, अपितु जीवन के उन पक्षों का चित्रण करता है जो मानवहित में हों, मानव में उदात्त भावों का विकास कर सके।
- (7) केवल दोष-दृष्टि से किया गया यथार्थ चित्रण यथार्थवादी चित्रण नहीं है।

(8) यथार्थ चित्रण का वास्तविक अर्थ केवल यथावत् चित्रण नहीं है, अपितु ऐसा यथावत् चित्रण है, जिसमें औचित्य का भाव निहित होता है।

(9) यथार्थवादी साहित्य में दोषों या अपराधों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर सामाजिक परिवर्तन (सामाजिक सुधार) की भावना अवश्य अन्तर्निहित रहनी चाहिए।

1.3.2. शिल्पगत घटक तत्त्व—

(1) यथार्थवादी साहित्य में लोक-प्रचलित स्वाभाविक भाषा का प्रयोग होता है जिसमें अलंकार आदि किसी भी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का आग्रह नहीं होता।

(2) यथार्थवादी साहित्य में स्वाभाविकता की रक्षा के लिए किसी एक विशेष प्रकार की शैली का नहीं, अपितु पात्रों और भावों के अनुरूप विविध प्रकार की शैलियों का आश्रय लिया जाता है।

(3) यथार्थवादी साहित्यिक निरूपण में स्थानीय वातावरण (Local colour) के निर्माण के लिए सूक्ष्म एवं नगण्य तथ्यों, तिथियों और प्रमाण के अन्य साधनों—पत्र, दैनंदिनी के पन्ने आदि—के द्वारा चित्रण को पूर्ण विश्वसनीय बनाया जाता है।

1.1.4 यथार्थवाद के स्वरूप-भेद—

यथार्थवाद के साथ अनेक साहित्य-मनीषियों ने अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। जैसे—नवीन यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, प्रगतिवादी यथार्थवाद, ऐतिहासिक यथार्थवाद, मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद, पूँजीवादी यथार्थवाद आदि। एक तरह से सभी यथार्थवाद के विविध रूप हैं; परन्तु यथार्थवाद के मुख्य रूप दो हैं—वर्णनात्मक और भावात्मक। वर्णनात्मक यथार्थवाद में वस्तुवर्णन की प्रधानता रहती है। जैसे—यदि किसी कृषक का वर्णनात्मक चित्र प्रस्तुत करना है तो उसके हल, बैल, खानपान, वेशभूषा आदि का विशेष ध्यान रहेगा। भावात्मक यथार्थवाद में उसके वैयक्तिक जीवन की आन्तरिक अवस्था का परीक्षण होता है। उसकी भावना, आकांक्षाओं और कल्पनाओं के समझने की चेष्टा रहती है। ऐसा भावात्मक यथार्थवाद दैन्य, दुःखदग्ध जीवन से भरपूर रहता है।

एक अन्य पद्धति से भी यथार्थवाद के मूल रूप दो माने गये हैं। उसके प्रथम रूप को प्रकृतिवाद, प्रकृतवाद, तादृश्यवाद, यथातथ्यवाद आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है तथा द्वितीय रूप समाजवादी यथार्थवाद कहा जाता है। प्रथम रूप प्रकृतिवादी यथार्थवाद नियति में विश्वास करता है और वैयक्तिक अथवा सामाजिक सुधार को असंभव मानता है। उसकी मान्यता के अनुसार मानव अपनी सहज

प्रवृत्तियों, वासनाओं और परिस्थितियों से पूर्ण नियन्त्रित है, वह इनके विपरीत कुछ भी करने में असमर्थ है। यह एक निराशापूर्ण स्थिति है।

सामाजिक अथवा समाजवादी यथार्थवाद इसके विपरीत कर्तव्य पर विश्वास करने वाला, आशावान्, सम्भावना-सापेक्ष और नीति-सापेक्ष है।

प्रकृतिवादी यथार्थवाद व्यक्ति के आधार पर नहीं, औसत जीवन के आधार पर अपने साहित्य का निर्माण करता है, जबकि समाजवादी यथार्थवाद की दृष्टि में औसत जीवन का कोई महत्व नहीं है। वह व्यक्ति का चित्रण समाज की एक इकाई के रूप में करता है और इस प्रकार वह व्यक्ति के माध्यम से ही समाज का महत्व स्वीकार करता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि होता है। उसका व्यक्ति-चित्रण, व्यक्ति-चित्रण न रहकर समाज-चित्रण हो जाता है।

पाश्चात्य साहित्यकारों में जोला, मोपासां, ज्वायस, एजरा पाउण्ड, जेम्स आदि प्रकृतिवादी यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा बाल्जाक, गौकी, कार्ल-माक्स, टालस्टॉय आदि समाजवादी यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रकृतिवाद या प्रकृतवाद का ही नाम विशुद्ध यथार्थवाद भी है, जिसके आधार पर रचा गया साहित्य एक समय में आकर अपूर्ण और निरर्थक माना गया और साहित्य-सृजन की एक नवीन शैली का आविर्भाव हुआ, जिसमें आदर्श और यथार्थ का समन्वय था। इस शैली को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी शैली कहा जा सकता है। यह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ही समाजवादी यथार्थवाद है। हिन्दी में मुंशी प्रेमचन्दजी इसके सफल प्रयोक्ता हैं।

यथार्थवाद का एक रूप प्रगतिवादी यथार्थवाद है। प्रगतिवादी विचारधारा पर आधारित यथार्थवाद प्रगतिवादी यथार्थवाद है। समाजवादी यथार्थवाद भी एक सीमा तक प्रगतिवादी विचारधारा पर आधारित है।

व्यक्ति और समाज का यथार्थ चित्रण करना सामान्यतः यथार्थवाद का लक्ष्य है; किन्तु इस चित्रण को इस ढंग से प्रस्तुत करना कि उससे व्यक्ति और समाज को आत्मविकास या आत्मोत्थान की प्रेरणा भी मिले, प्रगतिवादी यथार्थवाद का लक्ष्य है।

इस प्रकार यथार्थवाद के दो प्रमुख भेद हैं— समाजवादी और प्रकृतवादी।

1.5. यथार्थवाद के निकटस्थ सन्दर्भ—

यथार्थवाद ने जो विविध रूप समय-समय पर धारण किये हैं, उनमें से अति-यथार्थवाद और प्रकृतवाद विशेष उल्लेखनीय हैं, परन्तु अब यह निर्विवाद है कि अति-यथार्थवाद और प्रकृतिवाद, यथार्थवाद से भिन्न चिन्तन-सरणियाँ हैं; अतः अति संक्षेप में इनके मूलभूत अन्तर को भी समझ लेना अप्रासंगिक न होगा।

1.5.1. यथार्थवाद और प्रकृतवाद—

प्रकृतवाद का जन्म 19वीं शताब्दी के वैज्ञानिक आन्दोलनों के समय हुआ था। डार्विन, स्पेन्सर आदि वैज्ञानिकों ने प्रतिपादित कर दिया था कि मनुष्य अन्य जीवधारियों से अधिक श्रेष्ठ नहीं, अपितु उन्हीं का विकसित रूप है; वह भी प्रकृति का ही एक अंग है और उसी से परिचालित है।

प्रकृतवाद के अनुसार मानव को प्रकृत जगत का अभिन्न अंग माना जाता है। धर्म व नीति में इसकी आस्था का प्रश्न ही नहीं उठता। फलस्वरूप वह मानव के आध्यात्मिक पक्ष के स्थान पर उसके शारीरिक पक्ष को महत्त्व देता है व उसके आदर्शों की सारहीनता व व्यर्थता का विवेचन करता है।

जहाँ आदर्शवादी लेखक मानव का अति-भव्य चित्रण करते हैं, वहाँ जोला व ड्रेजर जैसे प्रकृतवादी लेखक मानव के हीनतर पक्ष तथा उसकी पाशविक वृत्तियों का अंकन करते हैं। इनकी आस्था मानव-सुधार में कतई नहीं है। सभी मानव जीवन-संघर्ष में उलझे हुए हैं और निर्बल को हटाकर सबल विजयी होते जाते हैं। अतः करुणा, सहानुभूति, त्याग और सहयोग की चर्चा व्यर्थ है।

1.5.2. यथार्थवाद और अति-यथार्थवाद—

अति-यथार्थवाद का स्वरूप यथार्थवाद को स्पष्ट करते समय ही बहुत स्पष्ट किया जा चुका है, अतः यहाँ उसके सम्बन्ध में फिर से कुछ कहना पिष्टपेषण के अलावा और क्या होगा? संक्षेप में यही दोहराया जा सकता है कि यथार्थवाद में जहाँ औचित्य का भाव निहित होता है, उदात्त भावना की प्रमुखता होती है, वहाँ अति-यथार्थवाद में उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। वह मानव के हित-अहित का कुछ भी विचार किये बिना जीवन का यथार्थ चित्रण करता है। इतना ही नहीं, वह अचेतन और अवचेतन मन में विद्यमान मनोविकारों को यथार्थ मानता है, अन्य को अयथार्थ मानता है; अतः इसके अनुसार सिर्फ जीवन की भेदसताओं, विद्रूपताओं व अश्लीलताओं का ही चित्रण यथार्थ चित्रण होता है।

1.5.3. यथार्थवाद और मानवतावाद—

काव्य और कला का मानव-जगत से निकटतम सम्बन्ध है और उनका मानव-उत्थान में योगदान ही मानवतावाद का मूलाधार है। कहना न होगा कि—

“समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थवाद का सर्वश्रेष्ठ रूप है जो मानवजाति के इतिहास में सर्वोच्च विचारों—समाजवाद के विचारों के आलोक में कला को जीवन की अनेकरूपता और जटिलता को प्राप्त करने की सम्भावना प्रदान करता है। इस यथार्थवाद को मानववाद से पृथक् नहीं किया जा सकता।”

इससे स्पष्ट है कि यथार्थवादी साहित्य मानवता के उत्थान के लिए ही होता है, होता भी चाहिए, अन्यथा वह 'साहित्य' जैसी महान् संज्ञा प्राप्त करने का अधिकारी न हो सकेगा।

यथार्थवादी साहित्य रूढ़िवादिता, धर्मान्धता, निरंकुश सत्ता, शोषण आदि के पक्ष में आवद्ध मानवता के उत्थान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यह साहित्य पतनोन्मुख जन-समाज को केवल उसकी यथार्थ स्थिति से परिचित ही नहीं कराता; उसके मानस में उन बगों और भावनाओं के विरुद्ध विद्रोह की सृष्टि भी करता है, जो उसके पतन, हीनता और दुरवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। इसी में इस साहित्य की सफलता और महत्त्व निहित है। समाज अथवा व्यक्ति की कुरूपताओं, हीनताओं अथवा नग्नताओं का चित्रण कर निकुण्ट कोटि का घृणित आनन्द प्रदान करने वाला साहित्य, साहित्य न होकर यथार्थवाद के नाम पर अपनी कुत्सित भावनाओं को व्यक्त करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यथार्थवादी साहित्य सुधार, परिवर्तन अथवा क्रान्ति का जन्मदाता है, उत्थान का संदेशवाहक है, पतन का उन्नायक नहीं।

इस प्रकार यथार्थवाद के विविध रूपों में से मानवता का संदेशवाहक होने से समाजवादी यथार्थवाद ही साहित्यिक यथार्थवाद है। इसमें भी और बेहतर होगा कि इसे 'वाद' के कटघरे में बन्द न किया जाये, 'वाद' की सीमाओं में परिवद्ध न किया जाये। यथार्थवाद का अर्थ हो—यथार्थ चित्रण, वास्तविक चित्रण, यथोचित चित्रण, सत्य चित्रण, हितकारी चित्रण।

द्वितीय अध्याय

निराला की कहानियों में वस्तुगत यथार्थवाद

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कहानी-साहित्य-साधना सन् 1923 ई० से प्रारम्भ होती है। अपने जीवन-काल में उन्होंने हिन्दी-साहित्य को कुल 25 कहानियाँ दी हैं। ये सभी कहानियाँ आज तो एक ही संग्रह 'निराला रचनावली, खण्ड 4' में संकलित हो चुकी हैं, किन्तु इससे पूर्व कहानी-संग्रह के रूप में उनके 5 संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं—

लिलि, सखी, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार एवं देवी।

'लिलि' (1933 ई०) में संकलित कहानियाँ अग्रलिखित हैं—पद्मा और लिलि, ज्योतिर्मयी, कमला, श्यामा, अर्थ, प्रेमिका-परिचय, परिवर्तन, और हिरनी।

'सखी' (1935 ई०) में संकलित कहानियाँ अग्रलिखित हैं—सखी, राजा साहब को ठेगा दिखाया, देवी, चतुरी चमार, न्याय, स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं, सफलता, एवं भक्त और भगवान।

'सुकुल की बीबी' (1941 ई०) में संकलित कहानियाँ अग्रलिखित हैं—सुकुल की बीबी, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, कला की रूपरेखा, एवं क्या देखा।

'देवी' (1948 ई०) में संकलित कहानियाँ अग्रलिखित हैं—देवी, भक्त और भगवान, चतुरी चमार, हिरनी, सुकुल की बीबी, अर्थ, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, क्या देखा, प्रेमिका-परिचय, एवं जानकी।

सन् 1945 में राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली से एक कहानी-संग्रह 'चतुरी चमार' भी प्रकाशित हुआ। इस संकलन में 'सखी' संग्रह की कहानियों को ही पुनः नये नाम से प्रकाशित किया गया है। नया इसमें कुछ भी नहीं है। हमारे अनुसार इसके नाम-परिवर्तन का कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि 'सखी' कहानी-संग्रह की कहानियों में से 'चतुरी चमार' कहानी हिन्दी-साहित्य में अत्यधिक चर्चित हुई। अनेक कहानी-संग्रहों में इसे स्थान मिला और समालोचकों ने भी इसकी काफी प्रशंसा की। इस बात का संकेत इस परिवर्तित नाम के कहानी-संग्रह 'चतुरी चमार' की भूमिका से भी मिलता है, जो इस प्रकार है—

“पहली कहानी ‘चतुरी चमार’ की हिन्दी-साहित्य में काफी चर्चा हो चुकी है। आलोचक अनेकानेक निबन्धों में इसकी प्रशंसा कर चुके हैं। संग्रहकार अपने संग्रहों में इसको स्थान दे चुके हैं।”¹

मूल्यांकन-सुविधा की दृष्टि से अब इन कहानियों को विभाजित कर लेना अनुचित न होगा।

निराला की समस्त कहानियों को विषय-प्रकृति के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(1) रोमेण्टिक कहानियाँ और (2) यथार्थवादी कहानियाँ।

किन्तु इससे यहाँ यह नहीं समझना चाहिए कि रोमेण्टिक कहानियों में यथार्थ चित्रण नहीं है। वे कहानियाँ तो सिर्फ इसी अर्थ में रोमेण्टिक हैं कि उनका वर्ण्य विषय प्रमुखतः प्रेम-चित्रण है; वरना उन कहानियों में प्रेम-समस्याओं को जिस खूबी से उभार कर प्रस्तुत किया गया है, वह उनका यथार्थवादी रूप ही है, क्योंकि प्रेम-समस्या भी हमारी और हमारे सम्पूर्ण समाज की एक ज्वलंत समस्या है। अतः वे भी यथार्थवादी कहानियों की तरह समस्या-प्रधान कहानियाँ ही हैं, सामाजिक कहानियाँ ही हैं। डॉ० बलदेव मेहरोत्रा ठीक ही लिखते हैं—

“इस प्रकार इनके विविध कहानी-संकलनों की समस्त कहानियों को यदि देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि निरालाजी ने सामाजिक समस्याओं को लेकर कहानियों की रचना की है। विधवा-विवाह, अछूतोंद्वारा, वेश्या-जीवन आदि विविध विषयों को लेकर उन्होंने अपने कहानी के कथानकों की रचना की है।”²

वस्तु और शिल्प दोनों में ही निराला के यहाँ जो यथार्थ चित्रण का अद्भुत सामञ्जस्य मिलता है वही उन्हें यथार्थवादी साहित्यकार कहने को हमें बाध्य कर रहा है। उत्कृष्ट यथार्थवादी साहित्य भी वही है जिसमें वस्तुगत यथार्थ चित्रण ही नहीं, शिल्प में भी यथार्थता हो, भाषा-शैली भी आडम्बर-रहित हो। अतः उनकी कहानियों में यथार्थवाद की खोज इन दो प्रसिद्ध बिन्दुओं के आधार पर करेंगे—वस्तुगत यथार्थवाद और शिल्पगत यथार्थवाद।

वस्तुगत यथार्थवाद

2.1. विषय-वस्तु-चयन—

निराला ने अपनी कहानियों की विषय-वस्तु हमारे समाज के ही विविध क्षेत्रों—पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, व्यापारिक आदि—से चुनी है, इसलिए उनमें किसी प्रकार की आकाशीय उड़ान नहीं है। पारलौकिकता, अतिविश्वसनीयता और चमत्कारिकता को उनकी कहानियों में कोई स्थान नहीं है,

1. निराला रचनावली, खण्ड, पृष्ठ 453

2. कदाशिलपी निराला, पृष्ठ 50

अपितु इनके नाम पर हमारे बीच व्याप्त धार्मिक-सामाजिक विकृतियों को निराला ने सशक्त ढंग से अनावृत किया है। यह बात अलग है कि निराला की प्रारम्भिक कहानियों में भावुकता या रोमैण्टिकता दिखाई देती है, जिसका कारण छायावादी प्रणय-भावना से सम्बन्धित उनका प्रारम्भिक दृष्टिकोण है।

निराला के जीवन के उत्तरार्द्ध की कहानियाँ तो यथार्थवाद की चरम सीमा पर हैं। चतुरी चमार, राजा साहब को ठेगा दिखाया, देवी, दो दाने, श्यामा आदि कहानियों की विषय-वस्तु साधारण लोक-जीवन से ही चुनी गई है। उनका कथानक साधारण मनुष्य का जीवन है, जो यथार्थवादी साहित्य की अनन्य विशेषता होती है। चतुरी चमार का जीवन हमारे समाज के ग्राम आदमी का जीवन है। 'सफलता' कहानी की आभा का जीवन हमारी ही समाज की अभिशप्त विधवा नारी का जीवन है। 'श्यामा' कहानी का सुधुवा लोघ हमारा ही ग्रामीण किसान है, जो जमींदारों द्वारा शोषित होकर प्राण तज देता है। 'पद्मा और लिलि' कहानी की विषय-वस्तु एक ऐसे रुढ़िग्रस्त परिवार से चुनी गई है, जिसके कारण स्वतन्त्र और प्रगतिशील विचारों वाली पद्मा आजीवन अधखिली कली रह जाती है।

'प्रेमपूर्ण-तरंग' और 'प्रेमिका-परिचय' कहानियों की विषय-वस्तु मुख्यतः प्रेमचित्रण ही है, किन्तु वे सामाजिक न हों—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि वे भी समाज की एक ज्वलंत समस्या का सजीव उद्घाटन करती हैं। क्या आज हमारे समाज की प्रेम-समस्या कोई छोटी समस्या है? क्या हमारे देश के कर्णधार नव-युवक प्रेम के नाम पर कुछ और नहीं कर रहे हैं? जिस उम्र के सदुपयोग से अपना और देश का भविष्य चमकाया जा सकता है, क्या उसी के दुरुपयोग से हम अपने सहित देश को बरबादी के गर्त में नहीं डाल रहे हैं? जिस प्रेम से सारे देश को एकता के सूत्र में पिरोकर समुज्ज्वल प्रगति-माल तैयार की जा सकती है, क्या उसी प्रेम के नाम पर आज हमारा समाज वासनात्मक विकृतियों की दुर्गन्ध से व्याप्त नहीं है?

कथाशिल्पी निराला ने इन कहानियों के माध्यम से ऐसी ही वासनात्मक विकृतियों की मखौल उड़ाई है। वर्तमानकालीन मनचले और रंगीन-तबीयत नौजवानों का सुन्दर परिचय पेश किया है। प्रेमकुमार और प्रेमपूर्ण के चरित्र को बड़े ही मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत कर आज के उन मजदूर वर्गीय युवकों पर व्यंग्य किया है, जो हर लड़की पर आशिक होने का दंभ भरते हैं। निराला ने उन्हें पाठ पढ़ाना चाहा है कि प्रेम कहीं बिखरा नहीं पड़ा रहता और यह समझना कि हर लड़की से सहज प्रेम किया जा सकता है, महान् भूल है।

'हिरनी' कहानी, कृष्णा नदी की बाढ़ में मिली हुई एक अनाथ बालिका की करुण कहानी है, जिसमें राजपरिवार में व्याप्त शोषण और अत्याचार की यथार्थ स्थिति से परिचित कराया गया है। यहाँ रानी साहिबा का क्रूर व्यवहार हृदय-विदारक है।

हत्यारा कोई और होता है और हत्यारे के एवज में जाँ उसका प्राथमिक उपचार करता है और उसकी मृत्यु होने पर सच्चे व्यक्ति की तरह शाने में सूचना देता है, ऐसे वीर परोपकारी बेगुनाह व्यक्ति को ही हत्यारा मान लिया जाता है—आज के समाज का यह तंगा रूप 'न्याय' कहानी में बड़ी सफलता से चित्रित किया गया है। यह कहानी आधुनिक युग में ध्वस्त होते हुए जीवन-मूल्यों की ओर स्पष्ट संकेत कर रही है।

कई कहानियों की विषय-वस्तु निराला ने अपने व्यक्तिगत जीवन से भी चुनी है, जिनमें उनकी विचारधाराएँ भी तथा उनके जीवन की विशेषताएँ भी प्रतिबिम्बित हुई हैं।

'राजा साहब को ठेगा दिखाया'—कहानी की विषय-वस्तु कथाकार की आँखों के सामने घटित एक सत्य घटना है, जो बंगाल और उड़ीसा को जोड़ने वाली नहर के किनारे बसी हुई एक राजधानी से सम्बन्धित है। वहाँ की राज्यदेवी विशालाक्षी का पुजारी विश्वम्भर भट्टाचार्य एक दीन ब्राह्मण है, जिसे बौस महीने से चेतन नहीं मिला है, बड़े कष्ट में दिन बीत रहे हैं, पर सुनवाई नहीं हो रही है। मौका पाकर विश्वम्भर ने अपनी आजीविका के लिए सब प्रकार से निराश होकर प्राणों की भाषा में घूमने निकले हुए राजा साहब के सामने अपने भाव प्रकट किये, जिन्हें अन्याया समझकर राजा साहब के सिपाही विश्वम्भर को पीटकर, उसकी दोनों हथेली और अंगुलियाँ कुचलकर चलते बने। इस पर भी जासूसों ने राजा साहब को और भड़का दिया, जिससे विश्वम्भर को स्टेट से आज्ञा-पत्र मिलता है कि 'यव तुम्हारी नौकरी की सरकार को आवश्यकता नहीं रही।'

इस प्रकार इस कहानी की विषय-वस्तु राजशाही परिवार और उसके उत्पीड़न का चित्र ही है, जिसमें गरीब प्रजा का शोषण दर्शाया है।

'देवी' कहानी की विषय-वस्तु तो निर्विवादरूप से यथार्थवाद के पूर्णतः अनुकूल है। इस कहानी की देवी निराला के लिए ही देवी है, वस्तुतः तो समाज द्वारा तिरस्कृत अत्यन्त निर्धन दीना पगली है। कहानी के माध्यम से लेखक ने समाज के बड़े-बड़े पदाधिकारियों, धर्म के ठेकेदारों, शिक्षण-संस्थानों, पुलिस और राज-नेताओं की वास्तविक स्थिति का और आर्थिक विषमता से उत्पन्न मनुष्य की गह्रित भावनाओं का यथार्थ चित्रण किया है। गरीबी के अभिशाप की यह कहानी हमारे सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन की यथार्थ स्थिति है।

'चतुरी चमार' और 'श्यामा' कहानियों में एकदम ग्रामीण जीवन की झंकी है। विविध विषमताओं से आपूरित ग्रामीण निम्नवर्ग ही इन कहानियों का विषय है। 'श्यामा' कहानी एक ऐसे गरीब भारतीय किसान की करुण-कहानी है, जो नाना प्रकार से जमींदार द्वारा आतंकित और पीड़ित किया जाता है और अन्त में जमींदार के आदमियों से मार खाकर दम तोड़ देता है।

‘श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी’ कहानी की विषय-वस्तु भी ग्रामीण परिवेश से ली गई है, जिसमें कहानीकार ने धर्म के नाम पर उपस्थित होने वाले सामाजिक प्रतिचार और तज्जनित व्यभिचार का अच्छा परिचय दिया है।

‘दो दाने’ कहानी अकाल के कारण उपस्थित हुई भुखमरी की भयंकर समस्या का दृश्य है। इस कहानी की कमला एक साधारण गृहस्थ की विधवा है, जिसे गाँव के चौथाई लोगों को काल के गाल में जाते और युवकों के पैर लड़खड़ाते देखकर मन ही मन यह तय कर लेना पड़ता है कि जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियों ने जीवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की है, वह भी करेगी, नहीं तो पक्ष के अभाव से सबके साथ-साथ अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी।

राजनीतिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करने वाली कहानियों में ‘परिवर्तन’ कहानी का भी प्रमुख स्थान है।

‘अर्थ’ शीर्षक कहानी आर्थिक समस्या और धार्मिक विकृति का चित्रण करने वाली गौरवशालिनी कहानी है।

निष्कर्षतः निराला ने अपनी कहानियों का विषय हमारे समाज के ही विभिन्न क्षेत्रों—पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक आदि—को ही बनाया है, जो यथार्थवाद के पूर्णतः अनुकूल है।

2.2. पात्र व चरित्र-चित्रण—

यथार्थवाद का विवेचन करते हुए कहा जा चुका है कि यथार्थवाद का अर्थ है—जीवन से सन्निकटता स्थापित करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथार्थवादी साहित्य में ऐसे पात्रों का चयन होता है, जिनके हृदय की धड़कन हमारे हृदय की धड़कन से मिलती है, जिनके सुख-दुःख हमारे या हमारे समाज के सुख-दुःख होते हैं।

जीवन से सन्निकटता स्थापित करने के लिए ही यथार्थवादी साहित्य के पात्र प्रायः निम्न-मध्य वर्गों से ही चुने जाते हैं, क्योंकि ये ही अधिकतम लोगों के बीच के होते हैं, उनका जीवन एक साधारण ग्राम आदमी का जीवन होता है। उच्च वर्ग को निम्न-मध्य वर्गों के परिप्रेक्ष्य में ही अर्थात् उनकी स्थिति को और अधिक उभारने के लिए ही कहीं कदाचित् स्थान मिल पाता है। उच्च वर्ग के लिए उच्च वर्ग को यथार्थवादी साहित्य में स्थान कभी नहीं मिलता।

यथार्थवादी साहित्य में प्रायः वे ही पात्र होते हैं, जिन्हें हम अपने पास-पड़ोस में ही आसानी से पा लेते हैं। अतिमानवीय पात्रों या कपोल-कल्पित पात्रों को स्थान नहीं मिलता है।

ध्यान रहे, यथार्थवादी साहित्य में कपोल-कल्पित पात्र नहीं होते हैं—इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके नाम, ग्राम आदि भी बिल्कुल सही ही होते हैं। वे तो प्रायः भूटे ही होते हैं। किन्तु उन भूटे नामादि द्वारा जो पहचाना जाता है,

36/निराला की कहानियों में यथार्थवाद

उसे हम अपने परिकर में ही अवश्य पा लेते हैं। इसीलिए तो कहा जाता है कि साहित्य में नाम, ग्राम, तिथि आदि के अतिरिक्त और सब कुछ सत्य होता है।

निराला की कहानियों के पात्रों की भी यही स्थिति है। वे नाम से चाहे चतुरी चमार हों चाहे विश्वम्भर भट्टाचार्य, कमला हो चाहे श्यामा, आभा हो 'चाहे सुपर्णा, पं० गदाधर हो चाहे पं० रामप्रसाद, राजीव हो चाहे नरेन्द्र, रमाशंकर हो चाहे कृष्णशंकर, रामनाथसिंह हो चाहे महेश्वरसिंह, कमलादेवी हो चाहे कोई और विशेष नामधारी; परन्तु वे सब हमारे परिकर के ही हैं, हमारे जाने-पहिचाने की हैं।

निराला ने जिस प्रकार अपनी कहानियों की विषयवस्तु समाज के ही विविध क्षेत्रों से चुनी है, उसी प्रकार कहानियों के पात्र भी स्वाभाविक रूप से समाज के ही विविध क्षेत्रों से चुने हैं।

समाज में विविध प्रकार के लोग होते हैं, अतः इन कहानियों के पात्र भी विविध प्रकार के हैं। एक तरफ डॉक्टर, जज, मजिस्ट्रेट, मैनेजर, वकील, राजा, जमींदार, दरोगा, राजनेता और स्वामी प्रेमानन्द जैसे उच्च या उच्चाभासी पात्र हैं तो दूसरी ओर कमला, आभा, हिरनी, श्यामा, पुखराज, नरेन्द्र, चतुरी चमार, विश्वम्भर भट्टाचार्य, सुधुवा लोथ जैसे निम्न और दीन-हीन पात्र भी हैं। एक ओर वीरेन्द्र ('ज्योतिर्मयी') और नरेन्द्र ('सफलता') जैसे क्रान्तिकारी पात्र हैं तो दूसरी ओर विजय ('ज्योतिर्मयी') और रमाशंकर वाजपेयी ('कमला') जैसे डरपोक पात्र भी हैं। एक तरफ पद्मा और राजेन्द्र ('पद्मा और लिलि') जैसे अनन्य प्रेमी पात्र हैं तो दूसरी ओर प्रेमकुमार ('प्रेमिका-परिचय') और प्रेमपूर्ण ('प्रेमपूर्ण-तरंग') जैसे स्वप्न-प्रेमी पात्र भी हैं। एक ओर शंकर ('प्रेमिका-परिचय') जैसे पारिवारिक कुलीनता का ध्यान रखने वाले पात्र हैं तो दूसरी ओर बंकिम ('श्यामा') जैसे नामानुसार वाममार्ग ग्रहण करने वाले पात्र भी हैं।¹

अनेक पात्र समाज के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्ति हैं। 'श्यामा' कहानी के पण्डित रामेश्वर और 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' कहानी के पण्डित गजानन्द शास्त्री वैद्यकी करते हैं। 'पद्मा और लिलि' कहानी के राजेन्द्र के पिता एक जज हैं और पद्मा के पिता मजिस्ट्रेट हैं। 'ज्योतिर्मयी' कहानी के सत्यनारायण शर्मा एक मैनेजर हैं। 'हिरनी' कहानी की हिरनी एक दासी है। 'सखी' कहानी की लीला एक साथ छात्र और अध्यापक दोनों है। 'न्याय' कहानी के बाबू माहेश्वरी-प्रसाद वकील हैं। 'राजा साहब को ठेगा दिखाया' कहानी का विश्वम्भर भट्टाचार्य राजपुजारी है। 'श्यामा' कहानी के सत्यप्रकाश आर्यसमाज के मन्त्री हैं। इसी

1. इस अनुच्छेद के कोष्ठकों में उन कहानियों के नाम दिये हैं, जिनमें सम्बन्धित पात्र का उल्लेख है।

प्रकार के पात्र अन्य भी हैं। कुछ पात्र स्वयंसेवक के रूप में सामने आते हैं। 'हिरनी' कहानी का चिदम्बर और 'श्याम' कहानी का राजीव ऐसे ही पात्र हैं।

निराला ने अपनी कहानियों के कुछ पात्र आध्यात्मिक क्षेत्र से भी चुने हैं, जिनमें स्वामी सारदानन्दजी और स्वामी प्रेमानन्दजी प्रमुख हैं।

गाँव के जमींदार और दरोगा आदि शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र भी निराला की कहानियों में बहुलता से मिलते हैं।

नारी पात्रों में भी सभी प्रकार की नारियाँ हैं। कुछ विधवा हैं, कुछ वेश्या हैं, कुछ परित्यक्ता हैं, कुछ छात्रा का जीवन जी रही हैं। 'क्या देखा' कहानी की हीरा और शान्ता वेश्याएँ हैं। 'कमला' कहानी की कमला श्वसुरपक्ष द्वारा परित्यक्ता नारी है। कुछ नारियाँ पारिवारिक रूढ़ियों और पुराने संस्कारों से ग्रसित हैं। उदाहरणस्वरूप 'पद्मा और लिलि' कहानी की पद्मा की माता का नाम लिया जा सकता है। कुछ नारियाँ स्वतन्त्र और प्रगतिशील विचारों वाली तथा तर्कशक्ति-सम्पन्न हैं। 'पद्मा और लिलि' कहानी की पद्मा और 'ज्योतिर्मयी' कहानी की ज्योतिर्मयी ऐसी ही नारियाँ हैं। 'सफलता' कहानी की आशा जैसी कुछ नारियाँ ऐसी भी हैं, जो भविष्य की उस नारी की झलक देती है, जो ठीक अर्थों में पुरुष की सहचरी बनकर उत्तरदायित्व निभाने वाली पत्नी होगी। 'कमला' कहानी की वेदवती भी जो आर्यसमाज के मन्त्रीजी की पुत्री है, नारी-स्वातन्त्र्य के आधुनिक भाव से प्रभावित है।

तात्पर्य यह है कि नारी-पात्रों के चयन में भी निराला का दृष्टिकोण प्रायः प्रत्येक स्थान पर यथार्थवादी रहा है।

यथार्थवादी साहित्य की एक और खास विशेषता है कि उसके पात्र प्रायः वर्ग-पात्र होते हैं। निराला की कहानियों के भी अधिक पात्र वर्ग-पात्र ही हैं।

'चतुरी चमार' कहानी का चतुरी चमार भले ही डाकखाना चमियानी, मौजा गढ़ाकोला, जिला उन्नाव का निवासी हो, लेकिन हमारे समाज में ऐसे चतुरी चमारों की कमी नहीं है। निराला के चिरंजीव रामकृष्ण त्रिपाठी और चतुरी-पुत्र अर्जुन भी हमारे बीच बहुत रहते हैं।

'गोदान' (मुंशी प्रेमचन्द) के होरी की भाँति 'श्यामा' कहानी का सुधुवा लोघ भी एक गरीब भारतीय किसान है, जो जमींदारों द्वारा शोषित और पीड़ित सम्पूर्ण किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी के राजा साहब जो मुसाहिबों और सिपाहियों से घिरे हुए हैं, शोषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं; तथा विश्वम्भर भट्टाचार्य नामक दीन-हीन ब्राह्मण पुजारी ऐसे शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा है, जिसे प्राणों की भाषा में पुकारने पर भी बीस-बीस महीने तक वेतन नहीं मिलता है, अपितु नौकरी से और हटा दिया जाता है।

‘श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी’ कहानी के पात्र श्रीमान् गजानन्द शास्त्री का चरित्र उस धर्मढोंगी वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जो बुद्धावस्था के निकट होने पर भी, कई पत्नियों का स्वर्गवास हो जाने पर भी, दाम्पत्य-जीवन में बँधे रहने की कामना रखते हैं तथा समय को पहचानकर समाज, राजनीति तथा अर्थ की दृष्टि से उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करते रहते हैं। पण्डित रामखेलावन एक परम्परावादी ब्राह्मण वर्ग के प्रतिनिधि हैं, जो धर्मभीरु हैं तथा वर्ग के अनुरूप ही पारिवारिक मर्यादा बचाने के लिए अपनी गर्भवती कन्या का विवाह एक बुद्ध से कर देने में भी नहीं हिचकते।

‘देवी’ कहानी की समाज द्वारा तिरस्कृत अत्यन्त निर्धन दीना तथाकथित पगली क्या हमारे समाज के किसी बहुसंख्यक समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती है ?

‘सफलता’ कहानी के प्रमुख पात्र आभा और नरेन्द्र जैसे कितने ही विधवा और विधुर हमारे समाज में विद्यमान हैं, जिनकी कला और साहित्य-निर्माण-शक्ति सुषुप्तावस्था में पड़ी हुयी है। नरेन्द्र और आभा की तरह यदि वे एक-दूसरे के पूरक बनकर समाज की रुढ़ियों का परित्याग करें तो श्रेष्ठ कलाकार के रूप में यश और ऐश्वर्य की उपलब्धि कर वेदना की निवृत्ति कर सकते हैं।

‘स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं’ कहानी के स्वामी सारदानन्दजी महाराज न सही हमारे समाज के किसी बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हों, किन्तु ऐसी महान् आत्माएँ भी कभी-कभी हमारे समाज में ही कहीं न कहीं मिल ही जाती हैं, अतः वे भी हमारे लिए अपरिचित नहीं हैं।

‘प्रेमपूर्ण-तरंग’ और ‘प्रेमिका-परिचय’ जैसी रोमेण्टिक कहानियों के पात्र प्रेमपूर्ण और प्रेमकुमार भी स्थूल वासनात्मक प्रेमियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

‘अर्थ’ कहानी की प्रमुख पात्र विद्या एक ऐसी भारतीय नारी है, जिसमें हमें भारतीय नारी की अविचल निष्ठा और अद्भुत त्याग की अनुपम माधुरी प्राप्त होती है।

‘ज्योतिर्मयी’ कहानी के पण्डित गंगाधर ने समाज के एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है, जो अपने पुत्र के विवाह में अधिकाधिक तिलक और दहेज लेने का अभिलाषी है।

शेष अन्य पात्रों की चर्चा विस्तार-भय से नहीं करते हैं, क्योंकि वह उपर्युक्त चर्चा से अधिक भिन्न नहीं है, उसी में गभित हो जाती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि निराला की कहानियों के पात्र समाज के ही विभिन्न क्षेत्रों से चुने गये हैं, उनमें पारलौकिकता या अतिमानवीयता की

गन्ध नहीं है तथा अधिकांश पात्र समाज के किसी न किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व भी अवश्य करते हैं।

यथार्थवादी साहित्य की एक और महत्वपूर्ण विशेषता है—चरित्रों के चित्रण में सजीवता और स्वाभाविकता। निराला की कहानियों में चरित्रों का चित्रांकन इतना मनोवैज्ञानिक है कि पात्र पूर्णतः सजीव और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि उनके पात्र कोई दैवीशक्ति-सम्पन्न पात्र नहीं हैं; त्याग, प्रेम, क्रोध, सहानुभूति आदि मानवीय भावों से रहित नहीं हैं, अपितु उनका हमसे जीवन्त सम्पर्क है, उनकी विचारधारा समाज के ग्राम आदमी की विचारधारा है।

निराला के पात्र उच्च मानवीय गुणों से सम्पन्न भी हैं तो उनमें ग्राम-आदमी में पायी जाने वाली मानवीय दुर्बलताएँ भी दिखाई देती हैं। वे अकेले आदर्श के पुतले नहीं हैं।

बंकिम ने खान-पान इत्यादि में नाम के अनुसार वाममार्ग तां ग्रहण किया है, सिगरेट से लेकर अण्डे-कबाब के प्रवेशिका द्वार तक भी प्रवेश कर लिया है, किन्तु वही बंकिम श्यामा को गरीब किसान की जानकर अपने बाग से ग्राम बीनने की स्वीकृति दे देता है। इतना ही नहीं, स्वयं भी कुर्ते में लगने वाले दाग की चिन्ता न करके तथा “एक ब्राह्मण का एक किसान को इस प्रकार ग्राम लाकर देना कहाँ तक उचित है और उसे देखकर लोग क्या सोचेंगे”¹—यह सोचे बिना ही श्यामा के घर तक ग्राम पहुँचा देता है। तथा जब वहाँ जाकर यह देखता है कि जमींदार के दो सिपाही दोनों तरफ से सुधुवा के कान पकड़े हुए उसे डेरे की ओर लिये जा रहे हैं और वहाँ ले जाकर उसे मारेंगे, क्योंकि उस पर साढ़े सात रुपये लगान के बाकी हैं, तो उसे गुस्सा आ जाता है और पास में रुपये न होने पर भी वह अपनी कीमती नगजड़ित सोने की अँगूठी को रेहत रख देता है और सोचता है कि वह सुधुवा का दारिद्र्य दूर कर देगा और गाँव के कसाई जमींदार को समझा देगा कि गरीब किसानों को किस तरह प्यार करना धनी कहलाने वालों का धर्म होता है। लगान चुका देने पर गाँव के पंच बंकिम के पिता से इस बात की शिकायत कर देते हैं। पिता उसे गुरुगर्जना में डाँटते भी हैं—“क्यों रे चमार! धर्म को धोकर पी गया” और यह कहकर चले जाते हैं कि अब उनके घर में उसके लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन बंकिम जातीयता की धुद्र दीवार को तोड़ चुका है। जो प्रतिज्ञा की है, उसे वह अन्त तक निभायेगा। उसी ने सुधुवा के अन्तिम संस्कार का आवश्यक क्रियाकर्म किया, जबकि बिरादरी का कोई व्यक्ति बुलाने पर भी नहीं आया। कानपुर जाते समय श्यामा द्वारा “मुझे भी ले चलो बाबू! तुम्हारे बर्तन मलकर दो रोटी खा लूँगी”—कहने पर वह उसे भी अपने साथ ले लेता है।

स्पष्ट है कि बंकिम अन्याय का विरोधी और सहानुभूति का धरोहर धारण करने वाला एक ओजस्वी युवक है। श्यामा ने उसे आकृष्ट किया है। सुधुवा की गरीबी ने उसे अभिभूत किया है। अपने पथ में अडिगभाव से बढ़ने वाला यह युवक तमाम अवरोधों को ठुकराने की क्षमता रखता है। रुढ़िवादी पिता की प्रताड़ना और समाज के बहिष्कार को अचिन्त्य मानता है। बंकिम का व्यक्तित्व दृढ़ता से युक्त, निर्भीक और रुढ़िवादिता का विरोधी है। उसके व्यक्तित्व के माध्यम से लेखक ने जमींदार के अत्याचार, विजातीय विवाह आदि प्रश्नों का उत्तर दिया है।

चरित्र-चित्रांकन में स्वाभाविकता के लिए निराला सिद्धहस्त है। उसके बाह्यरूप और आभ्यंतर विचारधारा तक को वे बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इसका एक प्रमाण 'प्रेमपूर्ण-तरंग' कहानी के चरित्र प्रेमपूर्ण का भी चित्रांकन है, जो मूलतः पठनीय है। स्थानाभाव के कारण उसे यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वह पर्याप्त विस्तृत है। मूल कहानी का प्रारम्भ डेढ़ पृष्ठ के बाद ही होता है, डेढ़ पृष्ठ तक प्रेमपूर्ण का ही मनोरंजक, पर यथार्थ चित्रण हुआ है।¹ 'प्रेमिका-परिचय' कहानी के पात्र प्रेमकुमार का चित्रण भी ऐसा ही मूलतः पठनीय है।² 'देवी' कहानी की तथाकथित पगली, जो इनकी देवी है, को यहाँ देख लीजिये—

“पास एक खाली स्थान के बरामदे में, पानी बरसने पर, वह आश्रय लेती थी। जब तक वह उठकर बिस्तर उठाकर जाय-जाय, तबतक उसका बिस्तर भीग जाता था, वह भी नहा जाती थी। फिर उसी गीले में पड़ी रहती। उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे टूटने लगा। उसे तपस्या करने की आदत थी, काम करने की नहीं। उसके हाथ-पैर बैठे-बैठे जकड़ गये थे। पानी पीने के लिए रास्ते के उस पार जाना पड़ता था। पानी की कल उसी तरफ थी। इस पार से उस पार तक इतना रास्ता पार करते उसे आधे घण्टे से ज्यादा लग जाता था। एक फलांग पर कोई इक्का या तांगा आता होता तो पगली खड़ी हुई उसकी प्रतीक्षा करती रहती। उसकी मुद्रायें देखकर कोई मनुष्य समझ जाता कि उस इक्के या तांगे से दब जाने का उसे डर हो रहा है। साधारण आदमी तबतक बार बार रास्ता पार करता। एक एकका निकल जाता, फिर दूसरा आता हुआ देख पड़ता। पगली अपनी जगह जमी हुई चलने के लिए दो-एक दफे घूमकर रह जाती। उसकी मुखमुद्रा ऐसी विरक्ति सूचित करती थी—वह इतनी खुल्लू भाषा थी कि कोई भी उसे समझ लेता कि वह कहती है, 'यह सड़क क्या मोटर-तांगे-इक्केवालों के लिए ही है? इन्हें देखकर मैं खड़ी

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 283-284

2. वही, पृष्ठ 334-335

होजें, मुझे देखकर ये क्यों न खड़े हों?’ बड़ी देर बाद पगली को रास्ता पार करने का मौका मिलता । तबतक उसकी प्यास कितनी बढ़ती थी— सोचिए ।”¹

इसी प्रकार ‘सफलता’ कहानी के विधुर नरेन्द्र के चरित्र को चित्रित करने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं । विधवा आभा से वह कहता है—

“विश्वास करो और आज से दुनिया को ठोकर मार दो—इसे जो जितनी ठोकरें लगा सका, इसकी आँखों में वह उतना ही बड़ा हुआ— उतना ही इसने उसके पैर पकड़े ।”……“वह संसार तुम्हारे लिए जैसा था, मेरे लिए भी वैसा ही था । तुम दुःख को दुःख समझती थी, मैं न समझ पाता था, या समझ कर भी न समझता था । अब हमें इस संसार को वैसे ही दुःख के भीतर से उचित शिक्षा देनी है ।”²

और वह आभा से अपने अँधेरे घर में प्रकाश भरने को चलने के लिए कह देता है तथा आभा द्वारा यह पूछने पर कि आपको लोग क्या कहेंगे, दृढ़ता से जवाब देता है—

“मुझे कुछ नहीं कह सकते, सब अपनी-अपनी किस्मत को रोयेंगे, जिसे किसी तरह वे फूटा नहीं समझ पाये—थाने जायेंगे, दरोगा के आगे-पीछे दुम हिलायेंगे—कुत्तों की तरह भौंकेंगे, पर कुछ कर नहीं सकते । सामने आकर काटना देशी कुत्ते जानते नहीं । मैं मुँह पर विलायती ठोकरें लगाना सीख चुका हूँ, तुम्हें भी सिखाना चाहता हूँ । आओ !”³

उक्त उदाहरण पात्रों की आन्तरिक विचारधारा का चित्रण करने वाले हैं । बाह्यरूप का चित्रण करने वाले उद्धरण भी पर्याप्त प्रस्तुत किए जा सकते हैं । ‘प्रेमिका-परिचय’ कहानी के शंकर ऐसे हैं—

“पीछे पूँछ-सी मोटी चोटी, कई पैंच के बाद बाँधने में एक कौशल, खोलने पर बाल बल खाते हुए । कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिजर्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीका है ।”⁴

पात्रों के मानसिक अन्तर्विरोध को निराला कितने सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

“कमला का हाल बयान से परे था । हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे । पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था । दुःख के आँसू उमड़ कर सारा घर डुबा देना चाहते थे । बच्चे सहम न जायें, चम्पा घबड़ा न जाय कि आता हुआ दाना तूफान

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 376

2. वही, पृष्ठ 394

3. वही, पृष्ठ 394

4. वही, पृष्ठ 335

और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बांध रही थी।”¹

पारिवारिक रुढ़िग्रस्त पात्रों का चित्रांकन भी बड़ा स्वाभाविक है। ‘ज्योतिर्मयी’ कहानी का विजय ऐसा ही पात्र है, जो आद्योपान्त रुढ़िग्रस्त है। वह ज्योतिर्मयी से प्रभावित होकर भी, मित्र द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर भी, उसे यही कहता है—

“पिता से कुछ बस नहीं कीरेन् ! उनके प्रतिकूल मैं कोई आचरण नहीं कर सकूंगा। मेरा हृदय अवश्य उसने छीन लिया है, शरीर पिताजी का है। कीरेन् ! मैं यहाँ दुर्बल हूँ।”²

इसी प्रकार की रुढ़िग्रस्त कुलीनता का दुर्बल रूप ‘कमला’ कहानी के रमाशंकर बाजपेयी में भी देखने को मिलता है।

नारी-पात्रों के चित्रांकन में निराला ने विशेष सावधानी बरती है। इनकी अधिकांश नारियाँ स्वतन्त्र और प्रगतिशील विचारों वाली हैं। वे तर्कों के बल पर खड़ा होना जानती हैं और इस रूप में भविष्य की ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो सच्चे अर्थों में पुरुष की सहचरी होंगी। जब रुढ़िग्रस्त विजय, ज्योतिर्मयी³ को सामाजिक बन्धनों को मानकर जीवन-यापन करने की शिक्षा देता है, तो वह इसे स्वीकार नहीं कर पाती है।

विजय के यह समझाने पर कि—

“कोई चारा भी तो नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है”—ज्योतिर्मयी तर्कसम्मत प्रश्न रखती है—

“अच्छा बतलाइये तो, यदि पहले व्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नी को मार-मार कर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ?”⁴

इसी प्रकार की क्रान्तिकारी नारियाँ और भी हैं, जिनमें ‘पद्मा और लिलि’ कहानी की पद्मा, ‘कमला’ कहानी की वेदवती, ‘सुकुल की बीवी’ कहानी की पुष्करकुमारी उर्फ पुखराज, ‘श्यामा’ कहानी की श्यामा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। ‘अर्थ’ कहानी की विद्या में भी हम भारतीय नारी का गौरवपूर्ण साक्षात्कार

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 440-441।

2. वही, पृष्ठ 308।

3. ध्यान रहे—यह ज्योतिर्मयी ‘सखी’ कहानी की पात्र नहीं, ‘ज्योतिर्मयी’ कहानी की पात्र है।

4. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 306।

पाते हैं। भारतीय नारी पति की लज्जा रखने के लिए किस प्रकार सहज ही आत्म-गौरव को विस्मृत कर देती है—इसकी सजीव भाँकी विद्या की भावनाओं से हमें प्राप्त हो जाती है।

निराला के अधिकांश निम्न, गरीब और असहाय पात्रों में स्वाभिमान की ज्योति जलती रहती है। 'परिवर्तन' कहानी की परिमलकुमारी उर्फ परी स्वयं धूप में गेंद फेंक देती है और हठ करती है कि ड्योड़ी के जमादार का लड़का सूरज उसे उठाकर दे। फलस्वरूप नौकर को आदेश मिलता है कि वह सूरज को ले आवे, न आवे तो कान पकड़ कर ले आवे। इस पर सूरज के पिता शत्रुघ्नसिंह की आँखों से आग निकलने लगती है और जवाब मिलता है—

“हम नौकर हैं, हमारा लड़का नौकर नहीं, और हम भी गेंद उठाने की नौकरी नहीं करते, तलवार बांधने की करते हैं, जाओ, परी की माँ से कह दो।”¹

इस दो टुक जवाब से उसे आज्ञा मिलती है—“परी के सामने पिता और पुत्र दोनों के कान पकड़कर गढ़ से बाहर कर दो।”² लेकिन शत्रुघ्नसिंह पहले ही से सूरज को साथ लेकर निकल जाते हैं।

‘चतुरी चमार’ कहानी के चतुरी में भी ऐसे ही स्वाभिमान की झलक दिखाई देती है, तभी तो निराला के चिरंजीव द्वारा अपने पुत्र अर्जुनवा को सताये जाने पर चतुरी, “काका ! एक बात है, अर्जुनवा तुमसे कहते डरता है, मैं घर आकर कहूँगा, बुरा न मानना लड़कों की बातों का”³ — कहकर निरालाजी को सतर्क कर देता है। निराला के शिष्य और चतुरी के पुत्र अर्जुनवा को भी अपनी बड़ी उम्र में निराला के पुत्र को श्रद्धा देते हुए प्रकृति के विरुद्ध दबना पड़ता था।

स्पष्ट है कि निराला के पात्रों का चित्रांकन पर्याप्त मात्रा में यथार्थवाद के अनुरूप है।

2.3. देश-काल-वातावरण-सम्बन्धी यथार्थ—

निराला की कहानियों में देश-काल-सम्बन्धी वातावरण का यथार्थवादी चित्रण हुआ है। ‘श्यामा’ कहानी के अन्तर्गत ग्रामीण वातावरण के परिप्रेक्ष्य में आषाढ़ के महीने का चित्रण देखिये—

“आषाढ़ का महीना, एक सप्ताह बीत चुका है। बादलों के टुकड़े आकाश में क्रीड़ा करते हुए इधर से उधर दौड़ रहे हैं। पलकों को हलकी कर, कभी पूरब

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 348

2. वही, पृष्ठ 348

3. वही, पृष्ठ 383

से पश्चिम, कभी पश्चिम से पूरव को ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही है। किसान आमों की अच्छी फसल होने से सुखी हैं। सभी के मुरभे कपोलों पर हँसी खेलती है। दो-एक दौंगरे गिर चुके हैं। हल चल रहे हैं, कहीं-कहीं जुवार, अरहर, तिली, बाजरे आदि बोये जा चुके हैं, कहीं बोये जा रहे हैं। छोटे-छोटे कपास के पौधे किसी-किसी खेत में उग रहे हैं। ईख लहरा रही है—उठायी मेड़ें बारिश से कहीं-कहीं छट गयी हैं। देहात बरसात के आगम से प्राणों में सुख-स्पन्द पाकर प्रसन्न हैं। बागों की हरी-हरी घास के मखमली गलीचों पर गाँव के गरीब बच्चे छुई-छुअल, गुलहड़, गिली-डण्डा खेलते अखाड़े गोड़कर कुदते, कुस्ती लड़ते हुए अपने-अपने आमों की रखवाली कर रहे हैं। सुबह से एक पहर दिन तक गाँव के प्रायः सभी बाल-वृद्ध-युवक किसानों की स्त्रियाँ, आम लेने, पेड़ हिलाने के लिए बागों में ही एकत्र चहल-पहल करते हुए मिलते हैं।¹

इसी प्रकार 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी में जेठ के महीने का चित्रण हुआ है।² 'अर्थ' कहानी में भी सावन की एक रात का हल्का-सा चित्र बनाया गया है।³ 'न्याय' कहानी में उषाकाल का बड़ा ही सुन्दर चित्र आलंकारिक शैली में इस प्रकार बनाया गया है—

“अभी उषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है। भास्कर-मुख अपर-प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट। मुख का मृदु-स्पर्श, प्रकाश, लघुतम धूलि जैसे, पर दिगन्तशोभ से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी बालिकाओं-सी स्वागत के लिए सज्जकर खड़ी हैं। पवन पुनः पुनः उषा का दर्शन शुभ-मधुर सन्देश दे रहा है। निविड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रमाती गा रहे हैं।”⁴

निराला की कहानियों में ग्रामीण और नगरीय वातावरण का चित्रण हुआ है। ग्रामीण अंचल का यह चित्र कितना यथार्थ है—

“गाँव की गली में साधारण किसानों की भजन मण्डली खड़ी थी। खँभड़ी पर लोग समस्वर से गा रहे थे—

‘कहत कोउ परदेशी की बात, कहत कोउ परदेशी की बात !

वइ तरु-लता, वइ द्रुम-खँजन, वइ करील, वइ पात !

जब ते बिछुरे श्याम साँवरे, ना कोउ आवत जात।’⁵

‘श्यामा’ आदि कहानियों में भी इसी प्रकार के और भी चित्र देखे जा सकते हैं। विश्वासहीन नगरीय वातावरण भी देख लीजिए—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 323

2. वही, पृष्ठ 387

3. वही, पृष्ठ 358

4. वही, पृष्ठ 361

5. वही, पृष्ठ 397

“एक साधारण-सी जगह के लिए कितने असाधारण कार्य करने पड़ते हैं ? कितना छल, कितनी खुशामद, कितनी सिफारिश दो रोटियों के लिए आज जरूरी हो रही है ?”¹

पहाड़,² बाग,³ लताकुंज,⁴ सिनेमाघर⁵ तथा रथयात्रा के समय बाजार⁶ की स्थिति के चित्रात्मक वर्णनों ने भी निराला की कहानियों को अत्यधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है। ‘हिरनी’ कहानी के प्रारम्भ में कृष्णा नदी की बाढ़ का यह चित्र कितना भयावह है —

“कृष्णा की बाढ़ बह चुकी है, सुतीक्ष्ण, रक्तलिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल-जिह्व योजनों तक क्रूर, भीषण मुख फैलाकर प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु तांडव कर रही है। सहस्रों गृहशून्य क्षुधाकिल्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल, साक्षात् प्रेतों-से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधों में सेनापति अकाल की पुनः शंखध्वनि हो रही है।”⁷

ठीक इसी प्रकार का चित्रण ‘देवी’ कहानी के प्रारम्भ में भी हुआ है। ‘परिवर्तन’, ‘हिरनी’ आदि कहानियों में राजसी वातावरण का यथार्थवादी चित्रण हुआ है। ‘क्या देखा’ कहानी का प्रारम्भ थाने के आसपास का वातावरण चित्रित करते हुए हुआ है।

इस प्रकार के देशगत वातावरण के अतिरिक्त निराला की कहानियों में कालगत वातावरण का भी चित्रण मिलता है, जिसके एक-दो उदाहरण ऊपर भी दिये जा चुके हैं, जो आषाढ़ के महीने और उषाकाल आदि से सम्बन्धित हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला की कहानियों में यथार्थवाद के अनुरूप देश और काल सम्बन्धी वातावरण का पर्याप्त चित्रण हुआ है।

2.4. वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

कहा जा चुका है कि निराला ने समाज में से जो गरल पीया था, उसी का विमोचन उनका कहानी-साहित्य है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में उनके वैयक्तिक जीवन के कटु यथार्थ का संकेत भी मिलता है। निराला ने अपने जीवन में भयंकर उतार-चढ़ाव भेले, आम आदमी के दुःखों को मानव-हृदय से परखा, जिन्होंने उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण के निर्माण में अपूर्व योगदान किया। वैयक्तिक जीवन के कटु यथार्थ का संकेत देने वाली कहानियों में ‘देवी’, ‘चतुरी चमार,’ ‘राजा साहब को

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 356

2. वही, पृष्ठ 357

3. वही, पृष्ठ 337

4. वही, पृष्ठ 444

5. वही, पृष्ठ 340

6. वही, पृष्ठ 285

7. वही, पृष्ठ 343

ठेंगा दिखाया' 'सुकुल की बीबी' एवं 'स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं' विशेष उल्लेखनीय हैं।

निराला ने अपने जीवन में घोर संघर्ष किया। साहित्यिक क्षेत्र में भी उनकी खूब अवहेलना हुई। किसी ने इनकी कविता को नहीं समझा। इनकी कोई कद्र नहीं हुई। यदि कोई रचना प्रकाशनार्थ किसी पत्रिका को भेजी जाती तो सम्पादकगण एक-दो पंक्तियों में उत्तर देकर उसे लौटा देते थे। इनके गरीब से गरीब मित्र कहीं के कहीं पहुँच गये थे, भौतिक समृद्धि का शिखर उन्होंने छू लिया था, लेकिन निराला को तो शायद अभाव-पीड़ित और अपमानित जीवन जीने का वरदान-सा मिला हुआ था। यहाँ सुख के क्षण कहीं से आयें? ऐसी ही दर्दनाक स्थिति का यथार्थ प्रस्फुटन निराला की कहानियों में यत्र-तत्र दिखाई देता है। प्रमाणस्वरूप 'देवी' कहानी का यह प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है—

“जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बात सोचते थे, यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे। अपनी तरफ से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को तरक से स्वर्ग बना रहा था, इसलिए मेरी दुनिया भी मुझ से दूर होती गई,.....वे (निराला के दूसरे मित्र) पहले फटीचर थे, पर अब अमीर बन गये हैं, दो-मंजिला मकान खड़ा कर लिया है, मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वर्गों में कहते हैं—‘हाँ, अच्छा आदमी है, जरा सनकी है’, फिर बड़े गहरे पँठकर मित्र के साथ हँसते हैं। वे उतनी दूर बढ़ गये हैं, मैं जिस रास्ते पर था, उसी पर खड़ा हूँ।”¹

इसी प्रकार के निराला के जीवन के अन्य अनेक प्रसंग भी उनकी कहानियों में अवतरित हुए हैं। मन्दिषादल राज्य में एक गरीब निरपराध किसान के साथ घटित प्रसंग उनकी लेखनी में आकर 'राजा साहब का ठेंगा दिखाया' कहानी बन गया है। शोषक प्रवृत्ति वाले अपने पुत्र के अन्याय को निराला ने अपनी 'चतुरी चमार' नामक कहानी में बड़े सजीव ढंग से चित्रित किया है।

निराला की कहानियों में वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ चित्रण के उत्कृष्ट उदाहरणस्वरूप 'कला की रूपरेखा' शीर्षक कहानी को प्रस्तुत किया जा सकता है। यह कहानी कोरी कहानी नहीं, उनके जीवन की सत्य घटना है। कहानी के शीर्षक के साथ ही कोष्ठक में 'सत्य घटना' मुद्रित है। सन् 1936 ई० के प्रारम्भ की बात है। निराला प्रयाग में 'निरुपमा' बेचने गये थे। वहाँ वे पंडित वाचस्पति

पाठक के यहाँ ठहरे थे। एक दिन जब वे स्टेशन पर मुसलमान दुकानदार के यहाँ अंडे या आमलेट खाने गये, तब एक अजनबी आदमी, उम्र 45 वर्ष के लगभग, सौरे का रंग, खासा मोटा-तगड़ा, एक लँगोटी से किसी तरह लाज बचाये हुए तंगे बदन दौड़ा हुआ इनके पास आया और कहने लगा—वह यात्री है, मद्रास का रहने वाला, कुम्भ नहाने आया था, यहाँ चोर उसके कपड़े-लत्ते, साल-असबाब उठा ले गये, गठरियों में ही रुपये-पैसे थे, अब वह हर तरह लाचार है, दिन तो किसी तरह धूप खाकर, भीख माँगकर पार कर देता है, पर रात काटी नहीं जाती। जाड़ा लगता है।

इतना कहकर वह निरालाजी के मोटे खददर के चादर को देखने लगा। निराला अब विचार न कर सके, वह चादर उतार कर उसे दे दिया। वह मारे आनन्द के दौड़ा हुआ अपने साथियों के पास गया और इस महादानी की तारीफ करने लगा।

ऐसी स्थिति में निराला के साथी पंडित वाचस्पति पाठक को यह बुरा लगा। उन्होंने कहा, यह अभी दोपहर को गुदड़ी बाजार में चार आने में यह चादर बेच देगा, इसने सिर्फ धोखा दिया है। लेकिन निराला ने कहा, धोखा भी हो सकता है और इसकी बात सच भी हो सकती है।

आश्चर्य की बात कि काफी दिनों बाद वही व्यक्ति स्वयंसेवक की वर्दी पहने हुए दौड़ता हुआ इनके पास आया और आनन्दपूर्ण लड़खड़ाती हिन्दी में कहा—मैं वही हूँ, जिसे आपने चादरा दिया था। निराला लिखते हैं—“मुझे कला का जीवित रूप जैसे मिला।”

पुनः एक बार वही व्यक्ति इनके पास फिर आया और बोला—“अब गर्मी बहुत पड़ने लगी है, देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा? पैदल जाना चाहता हूँ। पर गर्मी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं, अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।”

अब यहाँ निराला की दशा सममुच देखने लायक है। वे लिखते हैं—“मुझ पर जैसे वज्रपात हुआ। मैं लज्जा से वहीं गड़ गया। मेरे पास तब केवल 6 पैसे थे। इससे चप्पल नहीं लिये जा सकते थे। अपने चप्पल देखे, जीर्ण हो गये थे। लज्जित होकर कहा—आप मुझे क्षमा करें, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की कहानियों में इनके वैयक्तिक जीवन के कटु और कष्टानुभवों का भी यथार्थ चित्रण हुआ है।

2.5. पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

निराला की कहानियों में पारिवारिक जीवन की सम-विषम स्थितियों का भी यथार्थ चित्रण यत्र-तत्र खूब हुआ है। कहीं माता-पिता रूढ़िवादी हैं तो

पुत्र-पुत्री स्वतन्त्र और प्रगतिशील विचारों वाले हैं। कहीं भैयाचारों की स्थिति ठीक नहीं है तो कहीं दुःखद प्रसंग में भी कुटुम्बीजन साथ नहीं देना चाहते हैं।

2.5.1. पिता-पुत्री—

‘पद्मा और लिलि’ कहानी में पिता-पुत्री के सन्देहपूर्ण सम्बन्धों का अच्छा प्रकाशन हुआ है। पुत्री पद्मा अपने साथी नरेन्द्र से निश्छल भाव से मिलती और बातें करती है, जिन्हें आधी-अधूरी सुन-समझकर ही पद्मा के पिता पद्मा पर सन्देह व्यक्त करते हैं। इसी बात पर पिता-पुत्री में नोक-झोंक हो जाती है—

“रामेश्वरजी ने कहा— ‘तुम्हें इसलिए मैंने नहीं पढ़ाया कि कुल-कलंक बनो।’

‘आप यह सब क्या रहे हैं?’

“चुप रहो। तुम्हें नहीं मालूम—तुम ब्राह्मण कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय घराने का लड़का है—ऐसा विवाह नहीं हो सकता। रामेश्वरजी की साँस तेज चलने लगी, आँखें भौंहों से मिल गई।”¹

2.5.2. माँ-बेटी—

उक्त प्रसंग में ही माँ-बेटी के सम्बन्ध भी देख लीजिए। पद्मा की माता भी पद्मा पर पिता से कम सन्देह नहीं कर रही है। पद्मा द्वारा स्पष्टीकरण कर दिये जाने पर भी जब माता, पिता अर्थात् पति पं० रामेश्वरजी की तरफ देखकर कहती है कि ‘प्यार भी करती है और मानती भी नहीं, अजीब लड़की है’, तो पद्मा की सजल आँखें भौंहों से सट जाती हैं—

“चुप रहो, विवाह और प्यार एक बात है? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है तो वह उससे विवाह भी करता है? पिताजी जज साहब को प्यार करते हैं तो क्या उन्होंने उनसे विवाह भी कर लिया है?”²

यह है पारिवारिक जीवन में पिता-पुत्री और माँ-बेटी के सम्बन्धों की विषमता का यथार्थ चित्रण! आज यही हो रहा है घर-घर में।

2.5.3. पिता-पुत्र—

पिता-पुत्री के सम्बन्धों की तरह ही पिता-पुत्र के सम्बन्ध भी वैचारिक समन्वयपूर्ण नहीं है। वैचारिक मतभेद के कारण कहीं पिता-पुत्र में लड़ई हो रही है तो कहीं पुत्र पिता से दबकर अपने स्वतन्त्र जीवन का सत्यानाश कर रहा है।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 301

2. वही, पृष्ठ 302

बंकिम अपने रूढ़िवादी पिता की प्रताड़ना को ध्यान देने लायक ही नहीं मान रहा है और अपने रास्ते में निःसंकोच बढ़ा चला जा रहा है। 'श्यामा' कहानी का विजय ऐसा दबू पुत्र है, जो ज्योतिर्मयी को हृदय से चाहकर भी दहेजेच्छुक पिता के दबाव से ज्योतिर्मयी जैसे जीवन-साथी को जलाजलि दे देता है।

यही स्थिति 'अर्थ' कहानी के राजकुमार की है। वृद्ध पिता ने उससे कई बार कॉलेज जाने को कहा, लेकिन राजकुमार एक न सुनता और कहता—“अंग्रेजी शिक्षा से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।”¹

'चतुरी चमार' कहानी में स्वयं निराला के चिरंजीव निराला की कुछ सुनते ही नहीं हैं, बल्कि गलत कार्य करके भी हाजिरजवाब हैं।²

2.5.4. पति-पत्नी—

निराला की कहानियों में दाम्पत्य जीवन की सम-विषम स्थितियों का भी बड़ा सजीव प्रकाशन हुआ है। श्रीमती पंडित गजानन्द शास्त्रिणी, पंडित गजानन्द शास्त्री की चौथी धर्मपत्नी है। शास्त्रिणी की उम्र 16 वर्ष है, जबकि शास्त्रीजी की उम्र 45 वर्ष है। यह तो मात्र उम्रगत वैषम्य है, परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि शास्त्रिणीजी पतिव्रता-धर्म का पालन न करते हुए भी पतिव्रता स्त्रीधर्म पर लेख आदि लिखकर पति को भुलावे में डाल रही हैं।³

यह है दाम्पत्य जीवन की विषमता! भारतीय दाम्पत्य जीवन की सुस्थिति का भी एक चित्रण देखिए—

“भोजन पकाकर पति को समझाती हुई बोली—‘तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो—फिर हम दोनों एक साथ भीख मांगेंगे, पर अब मैं तुम्हें कहीं भी न जाने दूँगी। मेरे चार हजार के गहने हैं, तुम सब बेच डालो।’”⁴

2.5.5. साई-भाई—

भाई, भाई के साथ रहता हुआ दिखाई दे रहा है, लेकिन सचमुच वह भाई के साथ नहीं, समाज के साथ है। उसे भाई की चिन्ता नहीं है, उसका जो चाहे हो; बस, स्वयं को थोड़ी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम दंगे की भीषण आग से डरकर बेटी-बहू सहित भगे हुए पण्डित रामचन्द्र को घर लौटने पर उसके सगे भाई ने ही स्पष्ट जवाब दे दिया—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 352

2. वही, पृष्ठ 384

3. वही, पृष्ठ 432

4. वही, पृष्ठ 354

“घर में अभी आपका रहना नहीं हो सकता, क्योंकि आपके पीछे हम बे-धर्म तो हो नहीं सकते, हमारे भी छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनके भी जनेऊ और व्याह हमें करने हैं। सब लोग हमें छोड़ देंगे तो हम सिर्फ आपको लेकर करेंगे क्या ?”¹

2.5.6. भैयाचार—

उक्त प्रसंग में ही भैयाचारों की दुष्ट प्रकृति भी देख लीजिए—

“शाम को भैयाचारों का जभाव हुआ। सबने राय दी कि तुम लोग गधे बन गये हो, अब लाख धोने पर धोड़े नहीं बन सकते। इसलिए अब अपना परिवार लेकर अलग रहो।”²

— इसी प्रकार ‘अर्थ’ कहानी में पिता की तेरहवीं पर कुटुम्बीजनों का व्यवहार खासे दुश्मनों-सा चित्रित हुआ है।

2.5.7. सौत, ससुर, पति—

‘सुकुल की बीवी’ कहानी में एक स्थान पर पारिवारिक स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। सुकुल की बीवी पुखराज उर्फ पुष्करकुमारी के अतीत परिवार की स्थिति का वर्णन उसी के मुख से सुनिये—

“घर में पैर रखते, ससुर और पति ने तेवर बदले। पति ने कहा, इसके हमल है, हमारा नहीं। ससुर ने कहा— बदचलन है, धरम बिगाड़ने आई है, भली होती तो चली न आती, वहाँ के लोग परवरिश करते। पड़ोसियों की भी राय थी। सौत ने धरती उठा ली। एक रात पति ने बांह पकड़कर निकाल दिया। माँ रास्तों पर मारी-मारी फिरी।”³

2.6. सामाजिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि निराला की कहानियाँ सामाजिक कहानियाँ हैं। इनमें हमारे समाज का तन्म चित्र उपस्थित कर दिया गया है। निराला ने अपने जीवन में जो कुछ भी समाज में रहकर अनुभव किया, उसका लिपिबद्ध प्रकाशन ही उनकी कहानियाँ हैं। दूसरे शब्दों में—निराला ने समाज में रहकर जो विष पिया, उसे ही उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। डॉ० बलदेव मेहरोत्रा लिखते हैं—

“यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि निराला का कथा-साहित्य उनके युगबोध और उनकी सामाजिक मान्यता को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहा है। ‘साहित्य समाज का दर्पण है’—इस तथ्य का वास्तविक स्वरूप निराला के

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 320

2. वही, पृष्ठ 320

3. वही, पृष्ठ 420

कथा-साहित्य में दृष्टिगत होता है। समाज के यथार्थ को और समाज की भीगी हुई अनुभूतियों को सफलता के साथ चित्रित करने में निराला को अद्भुत सफलता मिली है।¹

निराला की कहानियों में विधवाओं, वेश्याओं, पूँजीपतियों, किसानों, जमींदारों, महाजनों, जज और मजिस्ट्रेटों, शिक्षित युवकों, नौकरों, मित्रों, सरकारी कर्मचारियों, पड़ोसियों, साहित्यकारों, दुकानदारों इत्यादि का जैसा सजीव चित्रण मिलता है, उसे किसी भी उत्कृष्ट यथार्थवादी साहित्य के साथ रखकर देखा जा सकता है।

जमींदार समाज में साक्षात् शोषण की मूर्ति हैं। ये लोग न मालूम कहाँ से लगान आदि के बहाने से बेचारे गरीबों पर पैसा बाँकी बताते हैं। गरीब द्वारा नहीं चुकाये जाने पर उसे कान पकड़ कर बुलवा लेते हैं, बुरी तरह इनकी पिटाई करते हैं। बेचारा गरीब बेहोश तक हो जाता है। यदि इस स्थिति से उबारने के लिए कोई बिरला मानवता का पुजारी स्वयं कर्जा चुका दे, उसकी बेहोशी दूर करने का प्राथमिक उपचार करे, तो भी उन्हें सहन नहीं होता है और उसे भी घर से, समाज से, जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। जमींदार का आतंक इतना कि दूसरा कोई जातिभाई या पड़ोसी भी कभी भयंकर कष्ट में भी थोड़ी भी मदद करने को तैयार नहीं होता, क्योंकि वे उन्हें ऐसा ही करने का आदेश दिये रहते हैं।

‘श्यामा’ कहानी के जमींदार दयाराम ऐसे ही व्यक्तित्व वाले हैं। उन्होंने गरीब किसान सुधुवा पर साढ़े सात रुपये लगान के बाकी निकाले, चुकाये न जाने पर उसे दो सिपाहियों से कान पकड़कर डेरे पर बुलवा लिया और वहाँ इतना मारा कि “बैत की मार से उसकी पीठ फट चुकी थी। नीम के पेड़ के नीचे बेहोश होकर मुँह के बल पड़ा था। मुश्कें बँधी थीं।”²

इसी प्रसंग में बंकिम की जमींदार से जो बहस-सी हुई, उससे जमींदारों का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है—

“आपने इसे मारा क्यों?” बंकिम ने पूछा।

‘भाई! मेरे तहसील-वसूल का तो यह कायदा ही है। ये मारे न जाँय तो न इनके रुपये वाले गढ़े से मिट्टी हटे, न लगान दें।’ दयाराम हँसने लगे।

‘आप जानते हैं— इसने इस साल ग्राम भी नहीं लिये, इसके पास एक रुपया भी न था।’ तेज गले से बंकिम ने कहा।

‘ये सब चकमे हैं। बाहरी ऐसा रूपक न बाँधें, तो भीतर की बात खुल जाय।’ दयाराम ने जनता की तरफ रुख करके कनखियों से राय ली।

1. कथाजिल्ली निराला, पृष्ठ 38

2. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 326

एक ही अर्थ की भिन्न-भिन्न अनेक ध्वनियाँ हुई— 'मालिक को सब मालूम है', 'जैसे पेट की बात ताड़ लेते हैं', 'तभी तो भगवान ने भागवान बनाया है', आदि-आदि।'¹

ऐसा होता है जमींदार और उसका परिकर ! इनके चापलूस भी कितने पक्के चमचे हैं, जो सत्य का गला घोटकर जनता के प्रतिनिधि के रूप में मालिक की ही आवाज में आवाज मिला देते हैं।

लगान चुक जाने पर भी स्वयं सेवा करना तो दूर, करने वालों को प्रोत्साहित करना भी दूर, बल्कि बाधक बना जा रहा है, उनसे वार्तालाप तक वन्द कराई जा रही है—

“जमींदार डेरे पर यह कहकर गाँव गये हैं कि— जब तक दोनों हमारे पास न आवें और माफी न माँगें, तब तक कोई इनसे बातचीत न करे।”²

जमींदारों की ऐसी ही दुष्ट प्रकृति का संकेत 'चतुरी चमार' कहानी में भी मिलता है।

निराला की कहानियों के काफी पृष्ठ भारतीय किसान की कष्ट कहानी से रंगे हैं। प्रमाणस्वरूप सुधुवा लोध की कष्ट कहानी सुनिये—

“हथेली से अपना सिर पकड़कर, कुछ खाँसकर संभलकर बोला—महाराज, आठ रुपये बीघे के हिसाब से ज़िमींदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी; जब खेत कुछ देने लगे, तब परसाल इन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इज़ाफ़ा लगान बीघा-पीछे पाँच रुपये माँगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय ?”³

महाजनों की लोलुप दृष्टि की साक्षी के लिए यह कथन द्रष्टव्य है, जिसमें बंकिम की कीमती नगजड़ित सोने की अँगूठी रेहन रखते हुए मालदार महाजन बड़ी देखभाल के बाद कहता है—

“आप हमारे मित्र पंडित रामप्रसादजी के लड़के हैं, आपको जरूरत पड़ गयी है, इसलिए तीस रुपये हम आपको देते हैं, यों हमारी निगाह में इसमें दस रुपये से ज्यादा सोना नहीं और नग के लिए चार-पाँच जोड़ लेते हैं।”⁴

कितनी मीठी कटार है !

साहित्यकार को चाहे मनीषी, परिभू, स्वयंभू आदि बहुत कुछ कह-कहकर कितना ही बड़ा दर्जा दे दिया जावे; किन्तु वह सब साहित्य में ही है, समाज में

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 326-327

2. वही, पृष्ठ 331

3. वही, पृष्ठ 324

4. वही, पृष्ठ 326

नहीं। समाज में तो साहित्यकार आम-आदमी की सुविधाओं से भी वंचित है। उसके साथी अपनी-अपनी करतूतों से अन्य-अन्य क्षेत्रों में कहाँ के कहाँ पहुँच जाते हैं, लेकिन हमारा साहित्यकार आजीवन अभाव-पीड़ित रहेगा—यह पक्की बात है। आत्म-चरित-कथन के रूप में स्वयं निराला लिखते हैं—

“जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बातें सोचते थे। यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे।.....‘दुबरा’ होत नहीं कबहूँ, पकवान के विप्र मसान के कूकर’—की सार्थकता मैंने दूसरे मित्रों में देखी, जिनकी निगाह दूसरों की दुनिया की लाश पर थी। वे पहले फटीचर थे, पर अब अमीर बन गये हैं। दोमंजिला मकान खड़ा कर लिया है। मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरोँ में कहते हैं—‘हाँ, अच्छा आदमी है, जरा सनकी है।’ फिर बड़े गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते हैं। वे उतनी दूर बढ़ गये हैं। मैं जिस रास्ते पर था उसी पर खड़ा हूँ, जिसके लिए मेरी इतनी बदनामी हुई, दुनिया से मेरा नाम उठ जाने को हुआ, जो कुछ था, चला गया, उस कविता को जीते-जी मुझे भी छोड़ देना चाहिए।”¹

साहित्यकारों की ऐसी ही चिन्तनीय व लज्जास्पद स्थिति का सजीव चित्रण ‘सुकुल की बीबी’ और ‘सफलता’ कहानी में भी हुआ है। ‘सफलता’ कहानी के नरेन्द्र का मित्र स्नेहशरण यद्यपि एक सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक है, पर अर्थ में सबसे बड़ा दरिद्र और उपेक्षित है। स्वयं नरेन्द्र एक अच्छा साहित्यकार है, परन्तु अपना पेट भरने तक के लिए उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं।

इधर हमारे अर्थाधिपति प्रकाशकों की स्थिति कुछ और ही है। वे साहित्य का असली उद्धारक अपने को मानते हैं। वे पुस्तक बेचने वालों को खूब कमीशन देंगे, पर पुस्तक के लेखक को नहीं के बराबर। नरेन्द्र ‘आरती’ के प्रकाशक से कहता है—

“आप लोग पुस्तकें बेचने के विचार से 50 और 60 प्रतिशत कमीशन बेचने वालों को देते हैं—यह आपकी साहित्य-सेवा नहीं, अर्थ-सेवा हुयी। यदि लेखकों को अधिक देने लगे तो किताबें अच्छी लिखी जाय और साहित्य का उद्धार हो।”²

लेकिन प्रकाशकों की सफलता का राज रतिशास्त्र, वनिता-विनोद और काम-कल्याण की पुस्तकों के प्रकाशन में ही माना जा रहा है, इसलिए भी ये उत्कृष्ट साहित्य और साहित्यकारों की ओर ध्यान क्यों दें? निराला लिखते हैं—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 372

2. वही, पृष्ठ 392

“हिन्दी में अनेक पुस्तकें इस (काम) शास्त्र पर प्रकाशित हैं, बल्कि प्रकाशन को सफल बनाने के लिए इस विषय की पुस्तकें आधार मानी गयी हैं। इससे लोगों को मालूम होगा कि यह धर्म किस अवस्था से किस अवस्था तक किस-किस रूप में रहता है।”¹

“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः” जैसे आदर्श वाक्यों की दिव्य शोषणा के बावजूद भी हमारे समाज में नारियों की स्थिति अत्यधिक अपमानजनक है। बाल-विवाह, विषम-विवाह, विधवापन, दहेजप्रथा, नारी-विक्रय, वेश्यावृत्ति आदि इसके ही विविध शर्मनाक रूप हैं। ‘देवी’ कहानी की तथाकथित पगली की स्थिति यह है—

“वह रास्ते के किनारे बैठी थी, एक फटी धोती पहने हुए। बाल कटे हुए।... तमाम चेहरे पर स्याही फिरी हुयी।... उम्र पच्चीस साल से कम। दोनों स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारों से लड़ती हुयी, मुरझाकर, मुमकिन है किसी को पच्चीस साल से कुछ ज्यादा ऊँचे।”²

स्वयं निराला इसकी चिन्ता करने लगे—

“यह कौन है, हिन्दू या मुसलमान? इसके एक बच्चा भी है, पर इन दोनों का भविष्य क्या होगा? बच्चे की शिक्षा, परवरिश क्या इसी तरह रास्ते पर होगी? यह क्या सोचती होगी—ईश्वर, संसार, धर्म और मनुष्यता के सम्बन्ध में?”³

निराला के पूछने पर संगमलाल “वह तो पागल है, और गूँगी भी है, बाबू! आप लोगों की धानियों से बची रोटी दे दी जाती है”⁴ —कहकर हँसता हुआ बात को अनावश्यक जानकर अपने काम पर चला गया।

ऊपर से लोग यह और समझाते हैं कि इसके पास बड़ा माल है, मिट्टी में गाड़-गाड़ कर इसने बड़े पैसे इकट्ठे कर रखे हैं।

एक दिन उसका बच्चा सोता हुआ करवट बदल कर दो हाथ ऊँचे वरामदे से नीचे फुटपाथ पर आ गिरा, जोर से चीख उठा। इधर एक महाशय अभी अनुमान ही लगा रहे हैं—

“जान पड़ता है, पगली कहीं गयी है, है नहीं।”⁵

होटल-मालिक ने दया प्रदर्शित करते हुए नौकर को आदेश दिया—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 425
2. वही, पृष्ठ 372
3. वही, पृष्ठ 372
4. वही, पृष्ठ 372
5. वही, पृष्ठ 377

“देख रे, पगली कहीं हो तो बुला तो दे।”¹

निराला के एक मित्र ने तो निराला द्वारा उस बच्चे को उठा लेने पर भी जुगुप्सा ही की—“अरे, यह तो गंदा रहता है।”²

ऐसी अत्यन्त उपेक्षिता और असहाय नारियों के प्रति हमारे नेताओं का भी खैया निन्दनीय है—

“एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था।.....भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा।.....नेता दस हजार की धूली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये—जरूरी-जरूरी कामों में खर्च करेंगे।”³

यह है हमारे देश की नारी की यथार्थ स्थिति ! ऐसी दर्दनाक कहानी के चित्र निराला की कहानियों में खूब रंगे पड़े हैं। षोडशवर्षीया सुपर्णा उर्फ श्रीमती पंडित गजानन्द शास्त्रिणी को 45 वर्ष के ऐसे व्यक्ति के साथ व्याहा गया है, जिसकी चौथी शादी हो रही है। पद्मा को अपने मित्र नरेन्द्र से निश्छल बातचीत करने का फल आजीवन कौमार्य मिला है। कमला जैसी निर्दोष नारी को भी अकारण ही लांछित कर दिया जाता है, फलस्वरूप उसे आजीवन परित्यक्ता नारी का जीवन बिताना पड़ता है। हिरनी जैसी अनाथ बालिका को दासियों की ईर्ष्याविश अधिक और उचित कार्य करने के फल में राजसी कोप का भाजन बनना पड़ता है। ‘श्यामा’ कहानी के पंडित रामप्रसादजी एक अठारह साल की युवती को आठ सौ रुपये में मोल ही ले आये।

हमारे समाज में प्रचलित बाल-विवाह का सर्वाधिक दुष्प्रभाव नारी पर ही पड़ता है। यहाँ तक कि शीघ्र ही अधिकांश बालिकाएँ ही विधवा हो जाती हैं। ज्योतिर्मयी अपने वैधव्य का परिचय देते हुए कहती है—

“मैं बारह साल की थी, समुराल नहीं गयी, जानती भी नहीं—पति कैसे थे, और विधवा हो गयी।”⁴

‘सफलता’ कहानी की आभा तथा ‘श्यामा’ कहानी की श्यामा और सरला की भी लगभग ऐसी ही स्थिति है।

सुख-दुःख में प्राणपण से साथ निभाने वाला मित्र होता है; पर क्या ऐसे मित्र हमारे समाज में हैं? कदापि नहीं। ये सब आदर्श की बातें हैं। मित्रों की यथार्थ स्थिति कुछ और ही है, परस्पर में छल-कपट उनकी अनिवार्य विशेषता हो

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 377

2. वही, पृष्ठ 377

3. वही, पृष्ठ 374

4. वही, पृष्ठ 306

गयी है। पगली का बच्चा फुटपाथ पर गिर पड़ा, निराला ने उसे उठा लिया और गोद में लेकर हिलाने लगे तो इनके मित्र कहने लगे—“अरे ! यह तो गन्दा रहता है।”

आज एक मित्र दूसरे मित्र की सहायता करना तो दूर, परन्तु उससे ईर्ष्यापूर्ण कटु व्यवहार रखता है, उसे चिढ़ाता है। इस स्थिति का चित्रण निराला ने अपनी ‘सखी’ कहानी में किया है। लीला के सम्बन्ध में श्यामा का कथन यह है—

“पक्की कंजूस है। पैसा दाँत से पकड़ती है। सौ रुपये कम से कम द्यूशन से पाती है, पर हालत देखो तो मालूम होगा—महादरिद्र।”¹

नौकरों का तो पूँजीपति कम शोषण करते ही नहीं हैं, परन्तु नौकरों का दुर्व्यवहार भी देखने ही लायक है। पारस्परिक द्वेष रखना और मालिक को उल्टी-सीधी रिपोर्ट देना—इतकी अविनाभावी विशेषता है। स्वयं तो कामचोरी करेंगे ही, कोई दूसरा काम करता होगा तो उससे और जलेगे, उसका हरसम्भव बुरा करने का मौका ढूँढ़ते रहेंगे। निराला ने अपनी ‘हिरनी’ एवं ‘राजा साहब को ठेंगा दिखाया’ आदि कहानियों में इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। हिरनी काम करने में इतनी तेज और सरल है कि रानी साहिबा ने उसका सार्थक नाम हिरनी रखा है। इससे अन्य दासियाँ जलने लगीं। एक दिन मौका पाकर श्यामा उर्फ स्याही नामक दासी रानी साहिबा को पटाती है—

“सरकार को हिरनी ने आज फिर धोखा दिया, मैं गई थी, उसकी लड़की को जूड़ी-बुखार कुछ भी नहीं।”²

फलस्वरूप हिरनी को भोंटा पकड़ कर बुलवाया जाता है।

इसी प्रकार ‘राजा साहब को ठेंगा दिखाया’ कहानी में राजा साहब का जामूस नौकर राजा साहब को विश्वम्भर के अँगूठा-पेट दिखाने का अर्थ कुछ और ही बताता है, फलस्वरूप बेचारे विश्वम्भर की पिटाई होती है, उसकी गदौरी और अंगुलियाँ कुचल दी जाती हैं। इतना ही नहीं, उसे नौकरी से ही हाथ धोना पड़ता है।

‘अर्थ’ कहानी में पड़ोसियों की क्षुद्र व संकुचित मनोवृत्ति का परिचय निम्न प्रकार चित्रित हुआ है—

“इनके पिता हैंसिया-खुर्पी छोड़कर परदेश गये थे, खैर उनकी तो निबह गयी, इन्हें देखो, पकड़ाते हैं चार साल में।”³

निराला की कहानियों में कहीं-कहीं सरकारी कर्मचारियों की भी जिस स्थिति का चित्रण हुआ है, वह सचमुच शर्मजनक है। ‘श्यामा’ कहानी के अनुसार—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 403

2. वही, पृष्ठ 345

3. वही, पृष्ठ 355

“वे सब सरकारी नौकर थे, तनखाह सौ से सिर्फ तीन-चार सौ तक पाने वाले, पर रिश्वत से, धर्म की आम सड़क से उतर कर, अदालत या अपने ऑफिस की गली और कूचे में, महीने में हजारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अधिकांश ऐसे थे, जो पाप पूरा कर चुके थे, अब पेंशन लेकर प्रायश्चित्त कर रहे।”¹

यह रिश्वतखोरी पता नहीं क्यों, अधिकांश सरकारी कर्मचारियों में घर करती जा रही है। कुछ ऐसी ही स्थिति ‘न्याय’ कहानी के वकील महेश्वरी प्रसाद की और ‘पद्मा और लिलि’ कहानी के आनरेरी मजिस्ट्रेट पंडित रामेश्वरजी शुक्ल की भी है।

कहते हैं—युवक हमारे देश के कर्णधार हैं, पर क्या यह यथार्थ है? उन्हें इस लायक माना जा सकता है? नहीं, यथार्थ कुछ और ही है। युवाशक्ति-सम्पन्न होते हुए भी वे रूढ़ियों और अंधविश्वासों में ऐसे फंसे हैं कि नया कुछ सूझता ही नहीं है। ‘ज्योतिर्मयी’ कहानी का विजय, जो रिसर्च-स्कॉलर है, चाह कर भी कोई क्रान्तिकारी भला कदम नहीं उठा पाता है, बल्कि खूब प्रेरित करने पर भी मित्र को अपनी लाचारी व्यक्त कर देता है—“वीरेन! मैं यहाँ दुर्बल हूँ।” अथवा—

“पिताजी से कुछ बस नहीं वीरेन, उनके प्रतिकूल कोई आचरण मैं न कर सकूँगा। पर आजीवन—आजीवन मैं सोचूँगा कि दुर्बल समाज की सरिता से एक बहते हुए निष्पाप पुष्प का मैं उद्धार नहीं कर सका।”²

यही हाल ‘कमला’ कहानी के रमाशंकर वाजपेयी का है, जो अंग्रेजी के एम. ए. हैं।

‘अर्थ’ कहानी का नवयुवक रामकुमार माने बैठा है—‘अंग्रेजी शिक्षा से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है’, फलस्वरूप कॉलेज जाने से भी छुट्टी हुई और धर्म का सहारा लेकर आलसी-अकर्मण्य बने बैठे हैं। जबकि घर में रोटियों के लाले पड़ रहे हैं।

आज के अधिकांश नवयुवकों के प्रतिनिधि प्रेमपूर्ण और प्रेमकुमार तो धरती पर ही पैर नहीं रख रहे हैं। प्रेमपूर्ण की हालत ऐसी है—

“जब देखिए—आप रोमेंस के भूखे ही रहे। फेल होने का यह भी एक मुख्य कारण है। बिना रोमेण्टिक नावेल की कुछ पंक्तियों की आवृत्ति किये रात को आपकी आँख नहीं लगती।……‘बिहारी-सतसई’ के हर-एक दोहे को अपने छात्र-जीवन में ही सार्थकता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। कदाचित् आप हिन्दी लिखना जानते होते तो ‘बिहारी-सतसई’ तथा अपर शृंगारी कवियों की कृति पर सजीव साध्य लिख देते।”³

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 322

2. वही, पृष्ठ 308

3. वही, पृष्ठ 283

निराला की कहानियों में मृत्युभोज, दहेज-प्रथा, छुआछूत, जाति-प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण भी बहुलता से दिखाई देता है। यहाँ उन सब पर सम्पूर्णतः प्रकाश डालना विस्तारभय से निर्भय रहना होगा। अतः यहाँ उनकी ओर संक्षिप्त संकेत करना पर्याप्त होगा।

दहेज समाज का अभिशाप बना हुआ है। निराला की कहानियों में दहेज-प्रथा का चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। 'ज्योतिर्मयी' कहानी से एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें दहेज की बात पक्की की जा रही है—

“बात यह है पंडितजी, कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रुपया तो लड़के की पढ़ाई में ही लग चुका है। लखनऊ के बाजपेयी आये थे, हमारा-उनका सम्बन्ध भी है, छः हजार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको खर्च भी पूरा न मिला तो लड़के को पढ़ा कर हमने फायदा क्या उठाया? इस सम्बन्ध में (इधर-उधर भाँक कर) हमें कुछ मिला भी नहीं तो इतना गिरकर.....”

‘अच्छा, तो कहिए, क्या चाहते हैं आप?’

‘पन्द्रह हजार।’

‘तब तो हमारे यहाँ बरतन भी साबित न रहेंगे।’

‘अच्छा तो आप कहिए।’

‘नौ हजार लीजिए।’

‘अच्छा, बारह हजार में पक्का।’

पण्डित सत्यनारायण अपनी अधारी सँभालने लगे।

‘बारह हजार देते हैं आप?’ पं० कृष्णशंकर ने उभर कर पूछा।

‘दस हजार सही, बताइये।’

‘अच्छा पक्का, मगर पाँच हजार पेशगी।’¹

इसी प्रकार हमारा समाज छुआछूत और जाति-प्रथा की गलित भावना से भी ग्रस्त है। निराला ने अपनी कहानियों में इनके चित्र भी खूब सजाये हैं। कुछ देखिये—

(1) “तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय-घराने का लड़का है—ऐसा विवाह नहीं हो सकता।”²

(2) “मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं, पर अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मान कर चलो—राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना, बस।”³

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 310

2. वही, पृष्ठ 301

3. वही, पृष्ठ 305

(3) “तुम लोग गधे बन गये हो, अब लाख घोने पर भी घोड़े नहीं बन सकते। अब अपना परिवार लेकर अलग रहो।”¹

मानवता की सख्त विरोधिनी यह जाति-प्रथा और छुआछूत की प्रवृत्ति घोर शर्मजनक है। जातीयता और छुआछूत की हिमायतें करने वाले भी अन्दर से सब खोखले हैं। जातीयता का खाली ढोंग रचते हैं। तुच्छ-सा भी मौका पड़ने पर जातीयता की दीवारें चुपचाप आप ही तोड़ लेते हैं। देखिये—

“दादा, लेकिन एक पै तो है, ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं, ऐसा फिर न हो कि कहीं के भी न रहें।”

‘तुम भी मारो गोली, हमको रुपये से मतलब, हमारे पास रुपया है तो भाई-बन्द, जात-विरादरी वाले सब साले आवेंगे। नहीं तो कोई लोटे-भर पानी को न पूछेगा।’

‘तो क्या राय है?’

‘विवाह करो, और क्या?’²

पण्डित देवीदयाल की ऐसी ही पोल ‘श्यामा’ कहानी में एक सामान्य-से व्यक्ति सुधुआ लोध ने भरी सभा में खोल दी है। ‘अर्थ’ कहानी में समागत वर्षी-प्रथा का चित्रण भी द्रष्टव्य है—

“पिता की वर्षी में दो हजार का खर्च है। इस बार विद्या के सब गहनो की बाजी है। बिना वर्षी किये जा नहीं सकता, पिता को लोग हँसेंगे। यह सोच-समझकर एक दिन वर्षी की तैयारी करनी पड़ी। विद्या ने कुल जेवर निकाल कर दे दिये। उनकी तरफ देखा तक नहीं। बराबर निगाह पति की आँखों से मिली रही।”³

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की कहानियों में सामाजिक यथार्थवाद के दर्शन कदम-कदम पर होते हैं। ये यथार्थवाद के अनुरूप पूर्णतः सामाजिक यथार्थवादी कहानियाँ हैं।

2.7. धार्मिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

सम्पूर्ण विश्व में धर्म और धर्मायतन प्राणिमात्र के हितसाधन के सर्वोत्कृष्ट निमित्त माने गये हैं। ‘स जीवति धर्मो यस्य जीवति’ एवं ‘धर्म ही सुख का मूल है’ इत्यादि इसके असंख्यात प्रमाण उपलब्ध हैं। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि उसी धर्म को हमने प्राणिमात्र का अहित करने वाला बना लिया है। बाल-विवाह, आजीवन वैधव्य, साम्प्रदायिकता, जातीयता, अन्धविश्वास, छुआछूत, आलसीपन आदि धर्म के नाम पर चलने वाली विकृतियाँ हैं।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 320

2. वही, पृष्ठ 309

3. वही, पृष्ठ 355

निराला की कहानियों में इन सभी धार्मिक विद्रूपताओं का यथार्थ चित्रण मिलता है।

‘श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी’ कहानी में बालविवाह का कारण पाप-भय ही प्रदर्शित किया गया है, जो धार्मिक क्षेत्र से ही सम्बन्धित है। पं० रामखेलावन अपनी पुत्री सुपर्णा की शादी शीघ्र इसलिए करना चाहते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि ग्यारह साल के बाद लड़की जितना ही पिता के यहाँ रहती है, पिता पर पाप चढ़ता है।

एक विधवा का विवाह भी धर्म की झाड़ू लेने से ही समाज-स्वीकृत नहीं हो पाता है। आजीवन वैधव्य में रहना ही विधवा का सर्वोत्तम धर्म है। ‘ज्योतिर्मयी’ कहानी का विजय संस्कृति की झाड़ू लेकर ही ज्योतिर्मयी—जैसे योग्य जीवन-साथी को अत्यधिक चाहकर भी विधवा होने के कारण नहीं अपना पाता है। यही कारण है कि ज्योतिर्मयी विधवा-विवाह के समर्थन के लिए शास्त्रों का ही निषेध करती है :—

“मानती रहें, चूँकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाये हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जबरन गुलाम बना रखा है।”¹

तथा तथाकथित शास्त्रों में प्रतिपादित ‘पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है’ का खण्डक अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती है :—

“यदि पहिले व्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यवाद पतिदेवता की प्रतीक्षा करती हो और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ?”²

इसी प्रकार धर्म की ही ओट में ‘अर्थ’ कहानी का नवयुवक रामकुमार आलसी-अकर्मण्य बना रहता है। देखिये :—

“पिता ने कहा, ‘बेटा, हम करारे के रुख हैं, तुमने पढ़ा भी नहीं, तो हमारे रहते कोई काम ही कर लो, नहीं तो पीछे तुम्हें कष्ट होगा’। रामकुमार गम्भीर होकर बोला, ‘आप इसकी चिन्ता न करें’। मन ही मन कहा, ‘कितना अविश्वास इन्हें ईश्वर पर है—पशु-पक्षि की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करे। अरे मन, धीरज क्यों न धरे ?’

रामकुमार को बालक-काल से सन्तों की उक्तियों पर दृढ़ विश्वास करने की आदत पड़ गई थी। गोस्वामीजी की चौपाई याद आयी—‘विश्व भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।’ जो भरत संसार का पालन करते हैं वह

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 306

2. वही, पृष्ठ 306

भोजन न देंगे, उन पर कितना अविश्वास है इन लोगों को—सोचता हुआ वह चला जाता, पिता खिन्न हो जाते।”¹

हमारे समाज में छुआछूत की प्रथा भी धर्म के साथ काफी मजबूती के साथ जुड़ी हुई है। एक ब्राह्मण, एक शूद्र से इसीलिए दूर रहना चाहता है, उसका कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहता है, क्योंकि ऐसा करने में उसका धर्म भ्रष्ट होता है। निराला की ‘श्यामा’ कहानी में इस स्थिति की स्पष्ट झलक मिलती है। ब्राह्मण-पुत्र होकर भी बंकिम सुधुआ लोध को दवाई पिला रहा है, इसलिए उसके पिता पण्डित रामेश्वरप्रसाद उसे डाँटते हुए कह रहे हैं :—

“क्यों रे चमार ! धर्म को धोकर पी गया।”²

इसी प्रकार अन्य भी अनेक धार्मिक विकृतियों का यथार्थवादी चित्रण निराला की कहानियों में देखा जा सकता है।

आज भगवान के भक्त भगवान के भक्त नहीं, भोगों के भक्त बन रहे हैं, विषयों के भिखारी बन रहे हैं। निराला इसे जानते थे। उनकी ‘अर्थ’ कहानी का रामकुमार रह-रह कर सोचता था कि “घरवाले ढोंगी हैं, बाहर से तो भगवान का नाम लेते हैं, पर भीतर से रुपया ही उनका लक्ष्य है।”³

यद्यपि ऐसा सोचने वाला यह रामकुमार ऐसा लगता है, मानों यह तो भगवान का सच्चा भक्त है; घर वाले ही हैं जो पैसे के भक्त हैं, परन्तु मौका पड़ने पर यही रामकुमार स्वयं भी यही करता है —

“(वह) शाम होने पर एक कोठरी में बैठकर भरतजी का नाम जपने लगा। रात ग्यारह बजे तक पाँच हजार जप पूरा कर वहीं एक चुटके में यह लिखकर कि मेरे इस जप की जो मजदूरी होती हो, यहीं अँगूँछे पर रख दीजिये।....सुबह उठकर रामकुमार नहाया, फिर भक्तिभाव से उस कोठरी में गया।....भीतर अँगूँछा जिस तरह फैलाया था, उसी तरह फैला है। भरतजी पाँच हजार नाम जप की मजदूरी उस पर नहीं रख गये।”⁴

ये हैं अच्छे-अच्छे भक्तों की दशा !

‘अर्थ’ कहानी के उपर्युक्त उद्धरणों में ही इस बात का भी परिचय मिलता है कि लोग भगवान को कर्त्ता-हर्त्ता मानते हैं और उससे अपनी इच्छाओं के अनुरूप कार्य करवाना चाहते हैं, जब कि भगवान तो इनके कार्य करते नहीं हैं, ये स्वयं ही दुःखी होते हैं। परिणाम यह होता है कि जितनी श्रद्धा भगवान के प्रति रखते हैं,

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 352

2. वही, पृष्ठ 330

3. वही, पृष्ठ 352

4. वही, पृष्ठ 353

उतना ही बाद में उनसे द्वेष करने लग जाते हैं। स्वयं रामकुमार को यह अनुभव हो जाता है :—

“जो राम पृथ्वी के ईश्वर हैं, जो भरत सृष्टि भर को भोजन देते हैं, उन्होंने स्वयं अपने भक्त की लाज ले ली, अब मैं किस विश्वास पर उन्हें पुकारूँ ?”¹

ये भक्त भगवान को प्रणाम करते हैं, पर इतने अविवेकी हैं कि कहीं नमना चाहिए और कहीं नहीं—इसका जरा भी विचार नहीं करते। अपने सिर को सड़े नारियल की तरह जहाँ चाहे फोड़ देते हैं। निराला की कहानी ‘भक्त और भगवान’ के भक्त निरंजन की दशा देखिये—

“सामने सिन्दूर की सजी सुन्दर मूर्ति पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। देखकर भक्तिभाव से प्रणाम किया। अर्थ कुछ नहीं समझा, पर उस पत्थर की मूर्ति पर प्राण मुग्ध हो गये। यह एक संस्कार था—एक मूर्ख संस्कार, जिसे ब्रह्मभाव के लोग आज कुसंस्कार कहते हैं, बृहत्तर के निर्माण के लिए प्रयत्न पर है।”²

जिस प्रकार यहाँ अर्थ समझे बिना नमस्कार करने की मूर्खतापूर्ण क्रिया का चित्रण है, उसी प्रकार रामायण की निम्नलिखित प्रायोगिक दुर्दशा भी द्रष्टव्य है, जो अर्थ समझे बिना ही किये गये शास्त्र-श्रवण का ही दुष्परिणाम है—

“एक दिन पगली के पास रामायणी समाज में कथा हो रही थी। मैंने देखा, बहुत से भक्त एकत्र थे। एतवार का दिन। दो बजे से साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण का पाठ शुरू हुआ, पाँच बजे समाप्त। ... पाठ सुनकर, मैंजर भक्तमण्डली चली। दुबली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बैठी हुई मिली। एक ने कहा, इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा, कर्म के दण्ड हैं। तीसरा बोला, सकल पदार्थ हैं जगमाँही, कर्महीन नर पावत नाही। सब लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गये।”³

ये रामायण के श्रोता ‘कर्महीन नर पावत नाही’ ... चौपाई बोल तो रहे हैं, पर क्या इन्हें इसका अर्थ भी पता है? और फिर दूसरी बात यह भी तो है कि उन्हें उक्त चौपाई की भाँति ‘परहित सरिस धर्म नहि भाई’ ... चौपाई क्यों नहीं याद आ रही है? वह भी गोस्वामी तुलसीदास ने ही लिखी है। परन्तु वह याद आवे कैसे, आ जावे तो दीना-हीना पगली के प्रति सहानुभूति का कष्ट न करना पड़े?

आज धर्म के नाम पर जो साम्प्रदायिकता फैली हुयी है, निराला ने अपनी कहानियों में उसे भी चित्रित किया है। ‘सुकुल की बीबी’ कहानी का यह अंश उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 354
2. वही, पृष्ठ 397
3. वही, पृष्ठ 374-375

“सुकुल तब क्रिश्चियन कॉलेज में प्रोफेसर थे। प्रिंसिपल को आश्वासन दिया था कि ईसाई-धर्म को वह संसार में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, लेकिन बूढ़े पिता का लिहाज है, और वह दो-चार साल चलते हैं, बाद को सुकुल क्रिश्चियन के अलावा दूसरा अस्तित्व नहीं रखते। दूरदर्शी प्रिंसिपल ने तब सिफारिश की और इन्हें जगह मिली।”¹

धर्म के ठेकेदार पुजारियों और पण्डितों की कुत्सित मनोवृत्तियों का निराला की कहानियों में खूब भण्डाफोड़ हुआ है। एक पुजारी की दशा का चित्रण देखिये—

“(रामकुमार ने) पहाड़ की सीढ़ियाँ तयकर बड़े भक्तिभाव से हनुमानजी को प्रणाम किया, पर पैसे न चढ़ाये। थे ही नहीं, गृहस्थ और पैसे न चढ़ाये। एक बाबाजी बैठे थे, गालियाँ देने लगे।”²

यहाँ पण्डितों की दशा तो बेहद घिनावती है। उनके षड्यन्त्रों का तो भगवान ही मालिक है। इनका तो अकेला नाम ही पण्डित है, यथार्थतः तो ये कुछ और ही हैं। ये लोग कैसे ही घृणित आचरणमय होते, कोई तकलीफ नहीं होती, किन्तु खेद तो इस बात का है कि ‘पण्डित’ जैसे उच्च पद को ही इन्होंने बदनाम कर दिया है; क्योंकि पण्डित तो उसे कहते हैं जिसमें सच्ची और अधिक बुद्धि उत्पन्न हो गई हो— ‘पण्डा संजाता यस्य सः’; परन्तु अधिक तो दूर, इनमें थोड़ी भी सच्ची बुद्धि नहीं है, अपितु खोटी बुद्धि और वह भी ढेर सारी भरी पड़ी है।

धर्म की ऊँची-ऊँची व्याख्या करने वाले पण्डित रामप्रसाद रामायण पढ़ाते हैं, परन्तु आपने आठ सौ रुपये में एक युवती कन्या मोल लेकर अपना नया विवाह किया है। उसे बंकिम के बंगला उपन्यासों के अनुवाद सुनाते हैं। नये विवाह के साल भर बाद ही बच्चा हो गया, जिसे बड़ा होने पर आपने अंग्रेजी स्कूल में अध्ययनार्थ प्रविष्ट किया है।

पण्डित गजानन्द शास्त्री ‘वैदिकी’ चले—इस अभिप्राय से तो रामायण सुनाते हैं और फिर विषय-भोगों के इतने लम्पटी हैं कि तीन-तीन पत्नियों का स्वर्ग-वास हो जाने पर भी, 45 वर्ष की उम्र में भी शादी करवाना चाह रहे हैं। इतना ही नहीं, इसके लिए वे कुछ भी कर सकते हैं, अपना अमूल्य स्वाभिमान तक बेच सकते हैं। शास्त्रों के वक्ता को तो प्रभुत्वसम्पन्न होना चाहिए³; किन्तु आप अपने श्रोता

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 421

2. वही, पृष्ठ 356

3. आचार्य गुणभद्र द्वारा विरचित ‘आत्मानुशासन’ में वक्ता का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

जो बुद्धिमान हो, जिसने समस्त शास्त्रों का रहस्य प्राप्त किया हो, लोकमर्यादा जिसके प्रकट हुई हो, आशा जिसके अस्त हो गई हो, जो कान्तिमान हो, उपशमी हो, प्रश्न करने से पहले ही जिसने उत्तर देखा हो, जो प्रश्नों को सहने वाला हो, प्रभु हो, निन्दारहितपने से मनोहारी हो, गुणनिधान हो, स्पष्ट-भिष्ट वचन वाला हो—ऐसा सभानायक धर्मकथा कहे।

—श्लोक-संख्या 5 का अनुवाद

से दबकर रहते हैं, उसके आदेशानुसार परिणामन करते हैं, अपने महत्वपूर्ण व्याख्यान में उसकी तारीफें करने लगते हैं, क्योंकि आपको उस श्रोता से अपने शादीरूप प्रयोजन की सिद्धि की आशा है। एक चित्र देखिये—

“(पण्डित गजानन्द शास्त्री की सभा का एक श्रोता एकान्त में) प्रसन्न होकर बोला, ‘मेरी मानिये तो वह ब्याह कराऊँ, जैसा कभी किया न हो, और वह अप्सरा, संस्कृत पढ़ी, रुपया भी दिलाऊँ।’

शास्त्रीजी पुलकित हो उठे। कहा, ‘आप हमें दूसरा समझते हैं? इतनी मित्रता, रोज की उठक-बैठक, आप मित्र ही नहीं, हमारे सर्वस्व हैं। आपकी बात न मानेंगे तो क्या रास्ता चलते की मानेंगे? आप भी!’

‘आपने अभी स्नान नहीं किया शायद? नहाकर चन्दन लगाकर अच्छे कपड़े पहनकर नीचे आइये। विवाह कराने वाले जमींदार साहब हैं, वहीं परिचय कराऊँगा। लेकिन अपनी तरफ से कुछ कहिएगा मत; नहीं तो, बड़ा आदमी है, मड़क जाएगा। घर की शेखी मत भूलियेगा। आप-जैसे उसके नौकर हैं। हाँ, जन्म-पत्र अपना हगिज न दीजिएगा। उम्र का पता चला तो न करेगा। मैं सब ठीक कर दूँगा। चुपचाप बैठे रहिएगा। नौकर कहाँ है?’

‘बाजार गया है।’

‘आने पर मिठाई मंगवाइयेगा। हालाँकि खाएगा नहीं। मिठाई से इतकार करने पर नमस्कार करके सीधे ऊपर का रास्ता नापियेगा। मैं भी यह कह दूँगा, शास्त्रीजी ने आधे घण्टे का समय दिया है।’

शास्त्री गजानन्दजी गद्गद् हो गये। ऐसा सच्चा आदमी यह पहला मिला है, उनका दिल कहने लगा।¹

ग्रामतौर पर देखा जाता है कि ये पण्डित लोग बिना अवसर की बात भी जब-तब कर देते हैं। पण्डित रामप्रसाद विवाह के अवसर पर ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं—

“इधर एक शिष्य के यहाँ विवाह था। न्यौते पर जाना ही पड़ा। वह डिप्टी-कमिशनर है। विवाह के समय भाषण करने के लिए कहा। हमने सोचा, विवाह का समय है, किस विषय पर भाषण करें? फिर ब्रह्मचर्य विषय पर कहा।”²

इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला ने अपनी कहानियों में धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचारों एवं अति-आचारों पर खुलकर व्यंग्य किये हैं, जो उनकी यथार्थवादी विचारधारा को प्रमाणित करते हैं।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 429

2. वही, पृष्ठ 329

2.8. आर्थिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

निराला ने अपनी कहानियों की विषय-वस्तु प्रधानतया निम्न-मध्य वर्ग से चुनी है। निम्न-मध्य वर्ग को विविध प्रकार की आर्थिक विषमताओं को अनिवार्य रूप से सहन करना पड़ता है। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि निराला की कहानियों में आर्थिक जीवन से सम्बन्धित विविध परिस्थितियों का भी अत्यन्त सजीव चित्रण मिलता है।

‘श्यामा’ कहानी का सधुवा लोध एक गरीब भारतीय किसान है, जिसके पास जमींदार का लगान चुकाने के लिए साढ़े सात रुपये भी नहीं हैं। फलस्वरूप उसे जमींदार के सिपाहियों द्वारा कान पकड़कर डेरे पर ले जाया जाता है और वहाँ उसकी ऐसी पिटाई की जाती है कि आखिरकार उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं।

‘राजा साहब को ठेंगा दिखाया’ कहानी के पुजारी विश्वम्भर भट्टाचार्य को बीस सहीने से वेतन नहीं मिला है। केवल पूजा के लिए प्राप्त तीन पाव चावल का सहारा रहा है। बड़े कष्ट में दिन निकल रहे हैं। कुछ और काम वह, उसकी पत्नी और उनकी बेटी तीनों अलग-अलग कर लेते हैं, फिर भी पेट भर को न होता था।

‘सखी’ कहानी की लीला की आर्थिक परिस्थिति स्वयं लीला के ही मुख से सुनिये—

“कॉलेज के अलावा पाँच घण्टे पढ़ाती हूँ। डॉक्टर साहब बड़े आदमी हैं। लड़कियों की पढ़ाई के लिए साठ देते हैं। मेरी हालत भी जानते हैं। तअल्लुकेदार रघुनाथ सिंह की नई पत्नी को पढ़ाती हूँ, चालीस वहाँ मिलते हैं। इसी में घर का कुल खर्च है।”¹

इसी प्रसंग में उसकी सखी ज्योतिर्मयी उर्फ जोत का निम्नांकित कथन भी द्रष्टव्य है—

“कहो तो, उसके यहाँ पैदा करने वाला कौन है? द्यूसन से अपना खर्च चलाती है, छोटे भाइयों को भी पढ़ाती है, साथ घर का खर्च भी है। बूढ़ी माँ को कोई तकलीफ न हो, इसके लिए बेचारी कितना खंटी है? मेंहनत की मारी सूखकर काँटा हो रही है। चेहरे में आँखें ही आँखें तो हैं।”²

‘अर्थ’ कहानी में हुआ आर्थिक परिस्थिति का यथार्थवादी चित्रण भी मूलतः पठनीय है। यहाँ बेचारे राजकुमार के घर में चूहे तक ग्यारस कर रहे हैं, जबकि अभी तो उसे पिता की वर्षी तक करना है। पत्नी के सब जेवर बेचना पड़ रहे हैं, निराभरण ही पत्नी को पीहर भेजना पड़ रहा है। उसकी पत्नी विद्या स्वयं ही उससे यह तक कह देती है—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 404

2. वही, पृष्ठ 404

“तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो; फिर हम दोनों एक साथ भीख माँगेगे; पर अब मैं तुम्हें कहीं भी न जाने दूँगा। मेरे चार हजार के गहने हैं, तुम सब बेच डालो।”¹

निराला की कुछ कहानियों में साहित्यकारों की आर्थिक परिस्थिति का भी बड़ा ही यथार्थवादी चित्रण हुआ है। ‘सफलता’ कहानी के नरेन्द्र का मित्र स्नेहशरण एक श्रेष्ठ साहित्यकार है, पर अर्थ में सबसे बड़ा दरिद्र और उपेक्षित है। यही हाल खुद नरेन्द्र के भी है। स्वयं निराला की गरीबी के अभिशाप की कहानी बड़ी दर्दनाक है। उन्हीं के शब्दों में — “मुझे बराबर पेट के लाले रहे।”²

हमारे देश में अधिकांश सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त दयनीय है। निराला की ‘सफलता’ कहानी में इसकी भी एक हल्की-सी झलक मिल जाती है। वे लिखते हैं—

“छोटे-छोटे पत्रों ने ब्लाक मँगवाकर और ऊँची आवाज लगाई।”³

अर्थात् विधुर नरेन्द्र और विधवा आभा ने अब रूढ़ियों की धुद्र दीवार तोड़ दी है, परस्पर एक दूसरे के पूरक बन गये हैं; इसी को सचित्र प्रकाशित करने के लिए किसी बड़े पत्र ने तो उनकी फोटो का ब्लाक स्वयं बनवा लिया, किन्तु छोटे पत्रों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि वे भी ब्लाक बनवा लें, इसलिए उन्होंने बने-बनाये ब्लाक मँगवाकर ही छापे। इस प्रकार यहाँ परोक्ष रूप से पत्र-पत्रिकाओं की आर्थिक स्थिति का चित्रण मिल गया है।

निराला की ‘देवी’ और ‘दो दाने’ कहानियाँ तो गरीबी के जबरदस्त अभिशाप की ही कहानियाँ हैं, जो आधोपान्त मूलतः पठनीय हैं। इनमें आर्थिक स्थिति का जो रोमांचकारी चित्रण हुआ है, वह सचमुच यथार्थवादी चित्रण है।

‘दो दाने’ कहानी के तो नाम से ही काफी अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कहानी आर्थिक विषमता से अच्छी तरह सम्बन्धित होगी। है भी। इसका तो मूल कथ्य ही यह है कि दो दाने के लिए व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता? ‘बुभुक्षितः किं न करोति पापं’ यहाँ अच्छी तरह चरितार्थ हो रहा है। इस कहानी की साधारण विधवा कमला जब दो दाने के लिए अपनी जवान पुत्री चम्पा को कलकत्ता के रूप-बाजार में बैठा देती है, तब की उसकी दशा अत्यन्त हृदयविदारक है। देखिये—

“कमला का हाल बयान से परे था। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था। दुःख के आँसू उमड़कर सारा घर डुबा देता

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 354

2. वही, पृष्ठ 372

3. वही, पृष्ठ 395

चाहते थे। बच्चे सहम न जाँय, चम्पा धवरा न जाय कि आता हुआ दाना तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से भी दिल बाँध रही थी। काँपते हाथों भी बेंटी को एक साफ साड़ी पहनाकर सजाया। बाल शाम को सँवार दिये थे।¹

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला की कहानियों में आर्थिक जीवन से सम्बन्धित विविध परिस्थितियों का यथार्थवादी चित्रण हुआ है।

2.9. राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित यथार्थ—

निराला की कहानियों में धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की तरह राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार का भी अत्यन्त सजीव चित्रण प्राप्त होता है। विविध कहानियों में राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित राजा, रानी और उनके नौकर तथा सिपाही, दरोगा एवं पुलिस की कुत्सित एवं अत्याचारमयी प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। सामन्ती विलासिता और अनैतिकता का पर्दाफाश किया गया है।

‘परिवर्तन’ कहानी के राजा महेश्वर सिंह ने कामलता दासी को रानी कामलता देवी बना लिया है और स्वयं पूर्णतः उसके अधीन हो गये हैं। सत्यासत्य का कोई विवेक नहीं है, प्रजा के हितहित का कोई ध्यान नहीं है। रानी ने जो चाहा वही हो जावेगा, चाहे वह कितना ही अन्यायपूर्ण हो। निराला ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है—

“पहले कामलता दासी, अब श्रीमती रानी कामलता देवी तिनक कर द्रुतपद राजा साहब के कमरे में गयी और आँखों की पुतलियों को भीहों के पास चढ़ाकर, एक झटका गर्दन का देती हुई बोली— ‘ऊँ हूँ, यह तो न होगा, सुना, तुम्हारी परी कभी-कभी सुरजुआ को बुलाकर खेलती है, इससे उनके पिताजी महान की मर्यादा जाती रहती है, क्योंकि उनके पुत्र अब दफ्तर में बाबू की जगह लेने वाले हैं। मैं पूछती हूँ, ऐसे आदमी को रखने से फायदा?’

‘फायदा क्या है? उसे निकाल दो।’ राजा साहब ने आज्ञा दी।²

कहता न होगा कि इस उद्धरण में राजा की ही नहीं, रानी की भी अत्याचारिणी प्रवृत्ति के यथार्थवादी दर्शन होते हैं।

‘भक्त और भगवान’ शीर्षक कहानी में भक्त निरंजन द्वारा राजा की नौकरी छोड़ने का कारण इस प्रकार बताया गया है—

“तहसील-बसूल, जमा-खर्च, खत-किताब, अदालत-मुकद्दमा आदि राज्य के कार्य प्रतिक्षण सर्प-दंशवत् तीक्ष्ण ज्वालामय हो रहे थे। हर चोट महावीरजी की

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 441

2. वही, पृष्ठ 348

याद दिलाने लगी। मन में घृणा भी हो गयी। राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है? प्रजा का रक्तशोषण ही उसका धर्म है।”¹

राजसी वातावरण का ऐसा यथार्थवादी चित्रण ‘हिरनी’ कहानी में भी मिलता है, जो बड़ा वेदर है—

“उसने भोंटा पकड़कर खींचते हुए कहा, ‘चल, सरकार बुलाती है।’

प्रार्थना की करुण चितवन में बूटासिंह को देखती हुई हिरनी बोली, ‘कुछ देर के लिए छोड़ दो, मयना को दवा पिला दूँ।’

घसीटता हुआ बूटासिंह बोला, ‘लौटकर दवा पिला चाहे जहर, सरकार ने इसी वक्त बुलाया है।’”²

राजसी वातावरण में आदेशमय प्रवृत्ति इतनी गहरी है कि परी जितनी छोटी-सी लड़की भी अपनी आकांक्षे भूलकर व्यर्थ ही सूरज-जैसे क्षत्रिय बालक को आदेश देती रहती है, जिसे ‘परिवर्तन’ कहानी में देखा जा सकता है। आजकल अपराधी को छोड़कर निरपराधी को अपराधी बना देना एक निम्न पुलिस कर्म है। ‘न्याय’ कहानी में पुलिस की इसी दुष्प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। इस कहानी में राजीव एक ऐसा पात्र है, जो छुरा के आघात से घायल व्यक्ति की कराह से पीड़ित हो उठता है और उसकी रक्षा के लिए उसे स्वयं उठा लेता है तथा अपने पलंग पर लाकर उसका प्राथमिक उपचार करता है और उसकी मृत्यु पर सच्चे व्यक्ति की तरह थाने में इसकी सूचना देता है। ऐसे वीर, परोपकारी, बेगुनाह व्यक्ति को भी हथियार मान लिया जाता है। आज के समाज का यह तंग रूप ‘न्याय’ कहानी में चित्रित है।

‘पुलिस का निरीक्षण भी कितना कमजोर है— इसका चित्रण ‘सुकुल की बीबी’ कहानी में दिखाई देता है। सुकुल की बीबी पुखराज उर्फ पुष्कर कुमारी की पुलिस द्वारा लोगों ने जब खोज करायी तो वह उस घर में आलमारी में ही छिपी थी, लेकिन पुलिस को इसका सुराग भी नहीं लगा।

सिपाहियों की स्थिति का भी निराला की कहानियों में यथार्थवादी चित्रण मिलता है। ‘राजा साहब को ठेगा दिखाया’ कहानी में सिपाही लोग निर्दोष पुजारी विश्वम्भर भट्टाचार्य की दोनों गद्दीरी और अंगुलियाँ कुचलते हुए चित्रित हुए हैं।

‘देवी’ कहानी में पुलिस के सिपाही बेचारी पगली की स्वयं सेवा-शुश्रूषा करना तो दूर, सेवा करने वाले अन्य को देखकर मुस्कुराते हुए चित्रित किए गये हैं।

प्रायः सभी नेताओं की स्थिति भी हमारे देश में काफी चिन्तनीय है। ये ‘नेता’ (ले जाने वाले) तो हैं, परन्तु सच्चे मार्ग के नेता नहीं, छोटे मार्ग के नेता हैं।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 401

2. वही, पृष्ठ 346

ये सचमुच हमारे आदर्श नहीं बन सकते हैं। 'देवी' कहानी में चित्रित एक नेता की यह स्थिति कितनी यथार्थ है—

“एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी डकट्टे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। भीड़ में उसका (पगली का) बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द भाड़कर चुप कराने लगी और फिर कैसी ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखा ! नेता दस हजार की धौली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये। जरूरी-जरूरी कामों में खर्च करेंगे।”
(—निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 374)

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की कहानियाँ विषयवस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से पूर्णतः यथार्थवादी कहानियाँ हैं। इनमें यथार्थवाद के अनुरूप देश-काल-वातावरण का भी सजीव चित्रण हुआ है। साथ ही वैयक्तिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त विषमताओं का भी यथार्थवादी चित्रण हुआ है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि निराला की कहानियाँ वस्तुगत यथार्थवाद की दृष्टि से अत्यन्त परिपुष्ट कहानियाँ हैं, उनकी आत्मा मूलतः यथार्थवादी है।

तृतीय अध्याय

निराला की कहानियों में शिल्पगत यथार्थवाद

यथार्थवाद की दृष्टि से श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कहानियों के भावपक्ष को पर्याप्त चर्चा कर लेने के पश्चात् उनके शिल्प पर भी थोड़ा दृष्टिपात कर लेना प्रसंगप्राप्त ही नहीं, आवश्यक भी है। कारण ? अन्यथा अध्ययन अधूरा ही रहेगा। अपनी बात को अभिव्यक्त करने के लिए यथार्थवादी लेखक जिन साधारण उपकरणों का सहारा लेता है वे सभी इस शिल्पपक्ष के अन्तर्गत विचारणीय हैं।

3.1. कहानी-शीर्षक—

सर्वप्रथम हम कहानियों के शीर्षक अथवा नामकरण कर विचार करना चाहते हैं। निराला की कहानियों के शीर्षक नितान्त सहज और निराङ्गुल हैं, जो यथार्थवाद के अनुरूप हैं। पारिवारिक सम्बन्ध-सूचक 'सुकुल की बीबी' कहानी का शीर्षक भी नामाधारित स्वीकार कर लिया जाय तो निराला की कुल पन्चीस कहानियों में से चौदह कहानियों के शीर्षक तो नायक-नायिका या पात्रविशेष के नाम के आधार पर ही निर्धारित किये गये हैं। शेष ग्यारह कहानियों में से दस कहानियों के शीर्षक घटना-व्यापारसूचक हैं। तथा एक कहानी 'क्या देखा ?' का शीर्षक कौतूहल-जनक शीर्षकों की कक्षा में आता है।

निराला की कहानियों के शीर्षकों में ही यथार्थवाद की स्पष्ट छाप दिखाई दे जाती है। समाज के दीन, हीन, परित्यक्त अथवा उपेक्षित व्यक्तियों को निराला ने अपनी कहानियों में नायक पद प्रदान किया है और उन्हीं के आधार पर अपनी कहानियों का शीर्षक निर्धारित किया है।

एक कहानी का शीर्षक पति-परित्यक्ता नारी के नाम पर रखा गया है—'कमला'। एक अन्य कहानी का शीर्षक गरीब व उपेक्षित किसान-पुत्री के नाम पर रखा गया है—'श्यामा'। एक अन्य कहानी का शीर्षक है—'देवी'। यह देवी और कोई नहीं, हमारे समाज की ही एक अत्यन्त उपेक्षित और दीन-हीन नारी है। समाज के निम्नवर्गीय पात्र को महत्ता प्रदान करते हुए निराला ने अपनी एक कहानी का शीर्षक रखा है—'चतुरी चमार'। 'ज्योतिर्मयी', 'हिरनी' आदि अनेक कहानियों के शीर्षक भी इसी प्रकार के हैं जिनमें यथार्थवादिता के मंगल दर्शन होते हैं।

3.2. कथाशिल्प—

निराला ने अपनी कहानियों का ढाँचा अपने दैनिक जीवन की घटनाओं से ही चुना है तथा लगभग सभी को तटस्थ द्रष्टा की तरह वर्णनात्मक पद्धति पर प्रस्तुत कर दिया है। 'अर्थ' कहानी की कथावस्तु का विन्यास ज्ञातव्य है। दो व्यक्ति (दिनेशकुमार और हीरालाल) पंजाबमेल में सफर कर रहे हैं और एक प्रसिद्ध उपन्यासकार के पूर्वजीवन की विषमता की चर्चा कर रहे हैं। इस चर्चा के व्यवस्थित लिपिबद्ध रूप का नाम ही 'अर्थ' कहानी है।

घटना-विन्यास के आधार पर कथावस्तु के तीन खण्ड किये जाते हैं— आरम्भ, मध्य और अन्त।

3.2.1. आरम्भ—

यदि अन्त प्रतिपाद्य है तो आरम्भ पूर्वपीठिका। यथार्थवादी आरम्भ को क्षिप्र और गतिशील होना चाहिए। उसमें भी यदि नाटकीयता और हो तो कहना ही क्या, सोने में सुहागा हो जाता है। निराला की 'ज्योतिर्मयी' कहानी का आरम्भ इसी प्रकार का है तथा इसीलिए जिज्ञासोत्पादक भी है—

“‘मानती रहें, चूँकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाये हुये शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जबरन गुलाम बना रक्खा है, कोई चारा भी तो नहीं, कैसी बात है?’ कमल की पंखुड़ियों-मी उज्ज्वल बड़ी-बड़ी आँखों से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चन्द्रिका, भरी हुई युवती ने कहा।

‘नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है।’ सहज स्वर से कहकर युवक निरीक्षण की दृष्टि से युवती को देखने लगा।”¹

निराला की कतिपय कहानियों का आरम्भ चित्रात्मक ढंग से हुआ है, जिसमें कहीं पात्र का और कहीं प्रवृत्ति का चित्र बनाया गया है। इससे वे कहानियाँ पर्याप्त स्वाभाविक बन पड़ी हैं। 'न्याय' कहानी का आरम्भ उषाकाल की मनोरम छटा के चित्रण द्वारा हुआ है—

“अभी उषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है, भास्कर-मुख अपर-प्राप्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट।.....”²

‘प्रेमिका-परिचय’ एवं ‘पद्मा और ललि’ आदि कतिपय कहानियों का आरम्भ पात्र-चित्रण द्वारा हुआ है। ‘प्रेमिका-परिचय’ का आरम्भ द्रष्टव्य है—

“बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी. ए. क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अंगरेजी हुकूमत में बदल गयी है, पर उन्हें बादशाह बाग की हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 306

2. वही, पृष्ठ 361

बुलबुल के परिस्तान में पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू-गायरी का अजहद शौक, इष्क का नाज उठाते हुए चलते, पलकों पर एक सदी पहले का स्वप्न। उर्दू के खुद भी कुछ असआर लिखे हैं, कभी-कभी हाँज की बगल में बैठकर पढ़ते हैं।”¹

निराला की ‘देवी’, आदि कतिपय कहानियों का प्रारम्भ कौतूहलपूर्ण ढंग से भी हुआ है। वैसे निराला की अधिकांश कहानियों का प्रारम्भ इतिवृत्त-जैसा है। कहानी के प्रारम्भ में भूमिका बाँधी गयी है। घटना-स्थल या/और घटना-काल का परिचय प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणस्वरूप ‘कला की रूपरेखा’ कहानी का आरम्भ द्रष्टव्य है—

“प्रयाग में था, लूकरगंज में, पं० वाचस्पति पाठक के यहाँ। ‘लीडर प्रेस’ में ‘निरुपमा’ बेचने गया था। जाड़े के दिन। सन् 1936 का प्रारम्भ। चाय पीने की लत है।……”²

3.2.2. अन्त—

आरम्भ की ही भाँति यथार्थवादी कहानी का अन्त भी सहज स्वाभाविक रहकर पूर्णता का बोधक होता है। कहना न होगा कि अन्त को देखते हुए निराला की कुछ कहानियाँ यथार्थवाद के पूर्णतः अनुरूप नहीं हैं। कई कहानियों का अन्त एकदम आदर्शवादी भी है। कतिपय कहानियों का अन्त नाटकीय पद्धति से पूरी कहानी का रहस्योद्घाटन करते हुए हुआ है, जिससे कहानी की समाप्ति बड़ी ही चमत्कारमयी बन पड़ी है। उदाहरणस्वरूप ‘पद्मा और लिलि’ कहानी का अन्त देखा जा सकता है—

“तुमने विवाह तो किया होगा?”

‘हाँ, किया तो है।’ हँसकर राजेन्द्र ने कहा।

‘किसके साथ किया?’

‘लिलि के साथ।’ उसी तरह हँसकर राजेन्द्र बोला।

‘लिलि के साथ?’ पद्मा स्वर में काँप गयी।

‘तुम्हीं ने तो कहा था—बिलायत जाना और मेम लाना।’

पद्मा की आँखें भर आयीं।

हँसकर राजेन्द्र ने कहा, ‘यही तुम अंगरेजी की एम. ए. हो? लिलि के माने?’³

इतिवृत्तात्मक प्रारम्भ वाली कहानियों का अन्त इतिवृत्तात्मक है, जिनमें कहीं-कहीं आदर्श का पुट भी दिखाई पड़ता है। यथा ‘हिरनी’ का अन्त इस प्रकार होता है—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 334

2. वही, पृष्ठ 407

3. वही, पृष्ठ 305

“जब पास पहुँची, उसको भुकाकर मारने के लिए रानी साहिबा ने घूँसा बाँधा। हिरनी के मुख से निकला—‘हे रामजी’।

रानी साहिबा की नाक से खून की धारा बह चली। वह वहीं मूर्छित हो गई। हिरनी के बाल, मुख उसी खून से रंग गये।

डॉक्टरों ने आकर कहा, ‘गुस्से से खून सर पर चढ़ गया है।’ तब से जरा भी गुस्सा करने पर रानी साहिबा को यह बीमारी हो जाती है।”¹

3.2.3. मध्य—

यथार्थवादी कहानीकार कहानी के आरम्भ और अन्त की ही तरह कहानी के मध्य में भी अपनी प्रवीणता का पूर्ण प्रयोग करते हैं। यथार्थवादी कहानी के मध्य में किसी न किसी समस्या अथवा संघर्ष का चित्रण भी अवश्य होना चाहिए।

निराला की प्रारम्भिक कहानियाँ छायावादी प्रणय-भावना से संयुक्त हैं, अतः उन कहानियों के मध्य में प्रेम और विवाह सम्बन्धी समस्याओं का चित्रण किया गया है। तथा अन्य कहानियों के मध्य भाग में आजीवन वैधव्य, बालविवाह, दहेज-प्रथा, जाति-प्रथा, छुआछूत आदि विविध सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है, जिनका विशेष अध्ययन हम गत अध्याय ‘वस्तुगत यथार्थवाद’ में कर चुके हैं।

3.3. संवाद-योजना—

यथार्थवादी साहित्य में यथार्थवाद की सबसे गहरी छाप संवादों पर ही होती है। स्वाभाविकता यथार्थवाद की जान है और वह स्वाभाविकता इन संवादों में कूट-कूट कर भरी होती है। पात्रानुरूपता और भावानुरूपता इनकी स्वाभाविकता की रक्षा करने वाले महत्त्वपूर्ण उपादान होते हैं, जिनका निर्वाह लेखक रुचिपूर्वक करता है। संवाद के क्षेत्र में निराला को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। निराला ने अपने पात्रों के संवादों को ज्यों का त्यों उठाकर अपनी कहानियों में रख दिया है, उन्हें कहानी में लाते समय सजाने का ढोंग बिल्कुल नहीं किया है। यही कारण है कि वे अवसरानुरूप विविध रूप धारण करते हैं। ‘चतुरी चमार’ कहानी का यह कथोपकथन द्रष्टव्य है—

“मैंने पुत्र-रत्न से कहा, ‘कान पकड़कर उठो-बैठो दस दफे’। उसने नजर बदल कर कहा, ‘मेरा कुमूर कुछ नहीं और मैं यों ही कान पकड़ कर उठूँ-बैठूँ’। मैंने कहा, ‘तुम इससे गुस्ताखी कर रहे थे’। उसने कहा, ‘तो आपने भी की होगी। इससे ‘गुण’ कहलवा दीजिए, आपने पढ़ाया तो है, इसकी किताब में लिखा है। मैंने कहा, ‘तुम हँसते क्यों थे?’ उसने कहा, ‘बया मैं जान-बूझकर हँसता था?’ मैंने कहा—‘अब आज से तो तुम इससे बोल न सकोगे’।.....”²

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 346

2. वही, पृष्ठ 384

स्पष्ट है कि निराला की कहानियाँ साधारण शैली के कथोपकथन में कथित हैं। उनमें पात्रों के संवादों को लेखक ने अन्यपुरुषात्मक शैली में एक तटस्थ वर्णन-कर्ता के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। ऐसा लगता है, मानों उसने पात्रों को बातें करते हुए कहीं सुना-देखा हो और उसे ही तटस्थ दर्शक की भाँति सुना रहा हो। इसीलिए निराला की कहानियों में समायोजित संवादों में स्वाभाविकता का आनन्द मिलता है।

जब दो व्यक्ति परस्पर वार्तालाप करते हैं तो प्रायः ऐसा नहीं होता कि एक ही व्यक्ति लम्बे समय तक बोलता रहे और दूसरा कुछ न बोले, इसीलिए संवादों में लघुता होना अच्छा माना गया है। निराला की कहानियों के संवाद कितने छोटे-छोटे भी हैं—यह उपरि-उद्धृत उद्धरण में भी देखा जा सकता है, तथा 'क्या देखा?' कहानी का यह वार्तालाप भी द्रष्टव्य है—

“अमरसिंह, तुम यहाँ कैसे आये? हीरा से क्या कोई पहले की जान-पहचान थी?”

अमरसिंह—‘हाँ, थी।’

प्यारेलाल—‘कैसे हुयी?’

अमरसिंह—‘उस समय वह कानपुर में रहती थी।’

प्यारेलाल—‘कानपुर में कहाँ?’

अमरसिंह—‘मूलगंज में।’¹

इसी प्रकार दो व्यक्तियों के वार्तालाप में ऐसा भी देखा जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे की बात सुनता ही नहीं है, अथवा कोई दूसरी प्रकरणान्तर बात कहकर प्रसंग ही बदल देता है अथवा बात को बीच में ही काटकर अपनी बात कहने लगता है। ‘श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी’ कहानी में पं० रामखेलावन और पण्डित गदाधर के बीच हुआ संवाद ऐसा ही है। पण्डित रामखेलावन पण्डित गदाधर के बोलने के बीच ही बोल उठते हैं—

“पण्डित रामखेलावनजी दोनों हाथ उठाकर जीभ काटकर सिर हिलाते हुए बोले, ‘नहीं महाराज, नहीं, यह तो अधर्म है। चाहिए तो हमें कि हम आपकी सेवा करें, बल्कि आपके सेवा सम्बन्ध में सदा के लिए……’”

‘अहाहा! क्या कही! क्या कही!’ कहकर पूरा दोना उठाकर एक रसगुल्ला मुँह में छोड़ते हुए मित्र ने कहा,……”²

यद्यपि निराला की कहानियों के संवाद लेखक द्वारा सूचित हुये हैं, तथापि लेखक यत्र-तत्र उनके बीच से हट जाता है और संवादों में स्वतन्त्रता का आभास होने लगता है। यथा—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 297

2. वही, पृष्ठ 430

“श्यामा, तुम्हारी शादी हो चुकी है ?”

‘हां ।’

‘तुम्हारी ससुरान यहाँ से कितनी दूर है ?’

‘वह है जगतपुर में ।’

‘तो वहाँ से मैं तुम्हारे शौहर और ससुर को बुलाये लाता हूँ ।’

‘वहाँ अब कोई नहीं ।’

‘क्यों, कहाँ हैं ?’

‘भगवान के घर ।’¹

ये संवाद स्वतन्त्र भी हैं, भावानुरूप भाषा-संयुक्त भी हैं, चरित्रोद्घाटक भी हैं, कथानक को अग्रसर करने वाले भी हैं, साथ ही छोटे-छोटे भी हैं, किन्तु यह भी मानना होगा कि कतिपय कहानियों में ये स्वतन्त्र संवाद अपेक्षाकृत बड़े हैं और काफी देर तक चलते रहते हैं। लगता है इनके बीच से लेखक हटकर कहीं दूर चला गया है। ‘क्या देखा?’ कहानी में आगत अमरसिंह और प्यारेलाल का संवाद ऐसा ही है।

मालूम हो कि यहाँ संवादों की पात्रानुरूप भाषा पर विचार नहीं किया गया है, क्योंकि आगे ‘भाषा-प्रयोग’ प्रकरण में उसकी चर्चा सहज ही हो जावेगी।

3.4. भाषा-प्रयोग—

निराला की कहानियों की भाषा भी यथार्थवाद के अनुकूल ही खड़ी बोली हिन्दी और नित्यप्रति व्यवहार में आने वाली शब्दावली-संयुक्त है। निराला चाहते हैं कि उनकी भाषा व्यावहारिक—स्वाभाविक हो, फिर चाहे उसके लिए अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, अरबी, फारसी आदि के शब्दों का भी सहारा क्यों न लेना पड़े, उन्हें कोई ऐतराज नहीं है। भाषा की स्वाभाविकता की कीमत पर उन्होंने वाक्यों के पदक्रम को भंग करना एवं शब्दों का विकृत हो जाना भी स्वीकार कर लिया है। भाषा की स्वाभाविकता को बेचकर भाषा की शुद्धता का पल्ला पकड़े रहना निराला की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। निराला ने साधारण रूप में जिस प्रकार की भाषा में समाज के लोग वार्ता करते हैं, उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग कर अपनी कहानियों को स्वाभाविकता प्रदान की है। ‘पद्मा और लिलि’ कहानी से भाषा का एक उदाहरण देखिये—

“डॉक्टर चले गये। रामेश्वरजी ने अपनी पत्नी से कहा—‘यह एक दूसरा फसाद खड़ा हुआ। न तो कुछ कहते बनता है, न करते। मैं कौम की भलाई चाहता था, अब खुद ही नकटों का सिरताज हो रहा हूँ।’”²

तात्पर्य यह है कि निराला की कहानियों की भाषा पूर्णतः व्यावहारिक और व्यर्थ के आडम्बर से रहित है। डॉ० नन्दकिशोर नवल लिखते हैं—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 331

2. वही, पृष्ठ 303

“इन कहानियों में उनका (निराला का) गद्य अनावश्यक साज-सँभार से मुक्त होकर नयी दीप्ति के साथ सामने आता है। उसमें जितना कसाव है, उतना ही पैनापन भी।”¹

भाषा में व्यावहारिकता और स्वाभाविकता होने का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि वह पात्रों और भावों के अनुरूप है। पात्रानुरूप भाषा के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं।

3.4.1. पात्रानुरूप भाषा—

एक घरेलू नौकर प्रायः अशिक्षित होता है, उसे भाषा की शुद्धता और वाक्यों के क्रम का ज्ञान नहीं होता है, इसलिए उसकी भाषा में शब्दों की तोड़-मरोड़ और वाक्यों का पदक्रम-भंग स्वाभाविक है। ‘पद्मा और लिलि’ कहानी में नौकर की भाषा इसी प्रकार की है—

“राजेन् बाबू मिलने आये हैं।”²

अथवा—“जरूरी काम से कुछ देर के लिए पण्डितजी जल्द बुलाते हैं।”³

उलाहना-सा देने हुए एक भारतीय पत्नी पति से क्या इसी प्रकार नहीं बोलती है—

“सुनते हो, तुम्हारे सपूत जमींदारों के यहाँ उठने-बैठने लगे हैं, बारात में चलने का न्यौता है।”⁴

भाषा को पात्रानुरूप बनाने के लिए निराला ने हिन्दीतर भाषाओं का भी खुलकर प्रयोग किया है, किन्तु अपने प्रेमी पाठकों की सुविधा के लिए उसके साथ ही कोष्ठक में उसका हिन्दी-अनुवाद भी देने की कृपा की है।

एम. ए. अंग्रेजी की विद्यार्थिनी विद्या अंग्रेजी में बात करती है, किन्तु श्याम अंग्रेजी नहीं बोलता है, वह संस्कृत में बात करता है—

“(विद्या ने) नाश्ता करते-करते कहा— Shyam, you did not take a little of even ? (तुमने जरा भी नहीं लिया ?)”

श्याम— किञ्चित्पूर्वं गृहीतं मया, विद्ये, तदेतदत्यधिकं भवति। (कुछ पहले मैं ले चुका हूँ, विद्या, यह ज्यादा होगा।)”⁵

3.4.2. भावानुरूप भाषा—

अब कुछ उदाहरण भावानुरूप भाषा के भी देख लेना चाहिए। ‘प्रेमिका-परिचय’ से एक उद्धरण प्रस्तुत है—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 13

2. वही, पृष्ठ 300

3. वही, पृष्ठ 300

4. वही, पृष्ठ

5. वही, पृष्ठ 445

“मेरे प्रिय प्रेमकुमार, आज इतने दिनों से कॉलेज जाती हूँ तो एक बार तुम्हें अवश्य देखती हूँ। नहीं देखती, तो दिल की आग नहीं बुझती। पर तुम, तुम कितने कठोर हो, मेरी तरफ भूलकर भी नहीं देखते। ईश्वर ने तुम्हें यह रूप मुझे जलाने के लिए दिया था। जो चीज अपनी नहीं, मैं उसे चाहती हूँ। तुम हँसोगे। हँसो! हँसो! यह मेरे भाग्य होंगे, पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलाने वाली आग तुम मुझे दोगे? जरूर दो, प्यारे, मैं कुछ भी तुम से इस नश्वर संसार में नहीं चाहती, सिर्फ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलाने वाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे सामने ही किस प्रकार जलकर राख हो जाती हूँ। प्यारे, अब यह हाथ जवाब दे रहा है, आँसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूँ? क्या एक बार तुम मेरे प्यासे दूँगों को तृप्त करने के लिए कल शाम बनारसी बाग में मुझे मिलोगे? तुम्हारा हमेशा, हमेशा के लिए दिल से आभार मानूँगी।”¹

यह तो हुई प्रेमपूर्ण भावों की भाषा। अब देखिये एक मजिस्ट्रेट की अधो-गर्भित गर्वावस्था की भाषा—

“हट जा मेरी नजरों से बाहर, मैं समझ गया।”²

एक हितैषी मित्र की मित्र के प्रति की गई भर्त्सना की भाषा देखिये—

“दिल के तुम इतने कमजोर हो! नष्ट होते हुए एक समाजविलुप्त जीवन का उद्धार तुम नहीं कर सकते विजय? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का सीधा-सादा एक लदहू बँल करने के लिए हुई है?”³

प्रतिष्ठित, पर अधोपतित उच्चवर्ग की प्रार्थना की भाषा देखिये—

“आपने हमारा पूरा-पूरा उद्धार किया है। अब इतनी कृपा और कीजिए कि इस मामले का भेद कहीं खुलने न पावे, नहीं तो हम किसी तरफ के न रहेंगे।”⁴

कितनी स्वाभाविक भाषा है! झुंझलाते हुए डाँटने की भाषा और देखिये—

“गड़ेस-गड़ास करता है, साफ नहीं कह पाता, क्यों रे, रोज दातीन करता है?”⁵

इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला की कहानियों की भाषा पूर्णतः पात्रानुरूप और भावानुरूप होकर स्वाभाविकता का अद्भुत आनन्द देती है।

3.4.3. भाषा-प्रकृति—

निराला मुख्यतः प्रेमचन्द-स्कूल की भाषा में कहानियाँ लिखते रहे हैं, किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है— निराला को भाषा के प्रति कोई आग्रह नहीं है। वे

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 336

2. वही, पृष्ठ 301

3. वही, पृष्ठ 308

4. वही, पृष्ठ 320

5. वही, पृष्ठ 384

किसी भी भाषा का प्रयोग करने तैयार हैं, बशर्ते उसकी स्वाभाविकता खण्डित न हो। यही कारण है कि उनकी कहानियों में कहीं-कहीं प्रसाद-स्कूल की भाषा का भी प्रयोग हुआ है; जो शुद्ध, साहित्यिक, आलंकारिक और कविस्वपूर्ण है। 'सफलता' कहानी का निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है—

“आभा के सस्नेह अकलुष प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने साल भर तक जला रखा था, वह साल भर से उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष की ओर तिरोहित हो गई है।”¹

निराला की कहानियों में कतिपय लोकगीतों का समावेश भी हुआ है, जिससे उनकी भाषा स्वाभाविकता की सुरक्षा करती हुई यथार्थवाद के और अधिक अनुकूल बन पड़ी है। कुछ लोकगीत निम्नलिखित हैं—

(1) कौन पुरुष की तार भ्रमाभ्रम पानी भरे।²

(2) कहत कोउ परदेसी की बात, कहत कोउ परदेसी की बात।³

3.4.4. वाक्य-योजना—

व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि सभी व्यक्ति एक प्रकार के वाक्यों का प्रयोग नहीं करते हैं। एक व्यक्ति भी सदा एक ही प्रकार के वाक्यों का प्रयोग नहीं करता। कभी हम छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं तो कभी बड़े-बड़े वाक्यों का। कभी प्रयत्न-लाघव, सुख-सुख, भावावेश या अन्य किसी कारण से हम व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करके वाक्यों में परिवर्तन कर लेते हैं, उनका पदक्रम बदल देते हैं, क्रियापद आदि का लोप कर देते हैं, आदि। कभी उनमें लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग कर लेते हैं तो कभी कहीं के उद्धरणों को अपने वाक्य का अंग बना लेते हैं। तात्पर्य यह है कि व्यावहारिक जीवन में हमारी वाक्य-योजना अवसरा-नुकूल विविधरूपा होती है। निराला की कहानियों की वाक्य-योजना भी नितान्त व्यावहारिक है। उनके वाक्यों का विन्यास पात्रों और भावों के अनुरूप विविध प्रकार का दिखाई देता है। कहीं छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग है तो कहीं बड़े-बड़े वाक्य भी स्वाभाविक बनकर सहज ही आ गये हैं। कहीं-कहीं वाक्यों का पदक्रम भी भंग हो गया है। स्थान-स्थान पर दूसरी भाषाओं के भी वाक्य और शब्द दिखाई पड़ जाते हैं। उद्धरणों, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग भी भाषा में सहज समाविष्ट हो गये हैं। 'सुकुल की बीबी' कहानी में प्रयुक्त ये वाक्य कितने छोटे-छोटे हैं—

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 389

2. वही, पृष्ठ 397

3. वही, पृष्ठ 397

“एक दिन की बात । मैं छत पर थी । शाम हो रही थी । सुकुल बरामदे में बैठे थे । मौसम बरसात का । बादल मदन की वैजयन्ती बने हुए । ठंडी हवा चल रही थी । पेड़-पौधे लोट-पोट । क्या कहूँ, मैं भी ऐसी हवा से लहरायी । बहुत पहले, कुछ ईंटों बाहर देखने के लिए जमाकर रखी थीं, उन पर खड़ी हो गयी । अवरोध के पार सिर उठाकर देखा । सुकुल बैठे थे । कई बार पहले भी देख चुकी थी । सुकुल ने न देखा था । अब के निगाह एक हो गई ।”¹

किन्तु इसके विपरीत ‘श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी’ कहानी का यह वाक्य कितना बड़ा है—

“देखिये—हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध, क्रिस्तान, सभी; साफा, टोपी, पगड़ी, कैप, हेट और पाग से लेकर नंगा सिर— घुटघा तक; अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, साम्राज्यवादी, आतंकवादी, समाजवादी, काजी, सूफी से लेकर छायावादी तक; खेड़े-वेड़े, सीधे-टेढ़े सब तरह के तिलक-त्रिपुंड, बुरके वाली, घूँघट वाली, पूरे और आधे और चौथाई बाल वाली, खुली और मुंदी, चश्मे वाली आँखें तक देख रही हैं । अर्थात् संसार के जितने धर्मात्मा हैं, सभी यौवन से प्यार करते हैं । इसलिये उसके कार्य को भी धर्म कहना पड़ता है ।”²

‘प्रेमिका-परिचय’ कहानी का निम्नलिखित वाक्य भी द्रष्टव्य है, जिसके पदक्रम में परिवर्तन कर दिया है—

“भई, है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार ।”³

प्रस्तुत वाक्य में ‘है’ पद क्रिया होने के कारण व्याकरण के नियमानुसार वाक्य के अन्त में आना चाहिए, किन्तु लेखक ने उसे अन्त में न लिखकर पूर्व में ही लिख दिया है जिससे उसकी ध्वनि एकदम स्वाभाविक बन गई है । इसी प्रकार ‘पद्मा और लिलि’ कहानी का यह वाक्य कि—

“हट जा मेरी नजरों से बाहर !”⁴

अपने मूल रूप में ‘मेरी नजरों से बाहर हट जा !’ —इस प्रकार होना चाहिए; किन्तु वाक्य के पदक्रम में परिवर्तन कर लेखक ने स्वाभाविकता का सफल निर्वाह किया है । इसी प्रकार अन्यत्र भी पदक्रम-भंग के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं । यथा—

1. अरे यार, मैं हूँ प्रेमपूर्ण ।⁵
2. और लगा मैं पूछते ।⁶
3. कितनी बड़ी आत्मप्रबंधना है यह !⁷

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 421
2. वही, पृष्ठ 424-425
3. वही, पृष्ठ 336
4. वही, पृष्ठ 301

5. वही, पृष्ठ 286
6. वही, पृष्ठ 286
7. वही, पृष्ठ 308

अपनी भाषा में स्वाभाविकता बनाये रखने के लिए निराला ने अपनी कहानियों में अपूर्ण वाक्यों का भी प्रयोग किया है। संवादों में तो ऐसा हुआ ही है, होता भी है; किन्तु स्वतन्त्र रूप में स्वयं कहानीकार द्वारा भी ऐसा हुआ है। जैसे—

“हृदय के रत्नाकर ने आज ही विष्णु को लक्ष्मी दी, लक्ष्मी को विष्णु।”¹

निराला ने अपने वाक्यों में संस्कृत के वाक्यों या वाक्यांशों का भी समायोजन किया है। ऐसे कुछ वाक्य देखिये—

1. मैंने कहा, अब ‘शुभस्य शीघ्र’ होना चाहिए।²

2. सच कहा है, स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?³

निराला की कहानियों में वाक्यों का विन्यास नित्यप्रति के व्यवहार के अनुरूप है, इसीलिए उनमें कुछ व्याकरण की स्वाभाविक अशुद्धियाँ भी दिखाई दे जाती हैं। कतिपय भाषिक दोषों का संकेत इस प्रकार किया जा सकता है—

संकरदोष—एम.ए. क्लास तक किसी प्रोफेसर के लेक्चर में यह असर न था।⁴

कारक-दोष—मुझे बाद को मालूम हुआ।⁵

लिंग-दोष—अपने चप्पल देखे, जीर्ण हो गये थे।⁶

3.4.5. शब्द-भण्डार—

हम देख चुके हैं कि निराला की कहानियों की भाषा यथार्थवाद के पूर्णतः अनुकूल दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली व्यावहारिक भाषा है। व्यावहारिक भाषा में इतर भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होता स्वाभाविक है। यही कारण है कि निराला की कहानियों की भाषा में विविध भाषाओं के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है। प्रमाणस्वरूप यहाँ हिन्दी-तर कुछ भाषाओं के कुछ शब्द प्रस्तुत हैं, जो निराला की कहानियों में यत्र-तत्र प्रयुक्त होकर स्वाभाविकता का अनुपम आनन्द प्रदान करते हैं। सर्वप्रथम उर्दू (अरबी-फ़ारसी) के शब्द प्रस्तुत हैं, तदनन्तर अंग्रेजी और संस्कृत के भी।

3.4.5.1. अरबी भाषा के शब्द⁷

खबर 315, सवब 302, शरीक 311, मुखतार 307,
तअल्लुक 314, तअल्लुब 324, हमल 420, मुमकिन 407,
इस्मशरीफ 409, तबादला 421, तालीम 395,
तहकीकात 292-295-385-421, इत्यादि।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 314

2. वही, पृष्ठ 420

3. वही, पृष्ठ 310

7. यहाँ शब्द के साथ ‘निराला रचनावली, खण्ड 4’ के उस पृष्ठ की संख्या दी गई है, जिस पृष्ठ पर वह शब्द प्रयुक्त है।

4. वही, पृष्ठ 417

5. वही, पृष्ठ 383

6. वही, पृष्ठ 412

3.4.5.2. फारसी भाषा के शब्द¹—

ताकियाकलाम 292, शौहर 331, रेहन 354, दरखास्त 389,
उस्ताद 395, वार्शिदा 379, बिरादरी 330, खानदान 314,
इत्यादि ।

3.4.5.3. अंग्रेजी भाषा के शब्द²—

इंगलिश 285, रिस्टवाच 285, यूनीवर्सिटी 299, चैन 312,
मेगजीन 300, मजिस्ट्रेट 301, ग्राइस-बैग 302, स्कूल 313,
सर्टिफिकेट 317, कॉटनमिल 319, सेपटीरेजर 339, हैट 421,
हाफ्टाइम 340, प्रेस-रिपोर्टर 410, सेंटेंस 339, स्टेज 395,
इंस्पेक्टर 421, प्रिंसिपल 421, स्टाम्प 310, ट्रे 446,
गवर्नमेण्ट 438, ब्लैंड 339, इत्यादि ।

3.4.5.4. संस्कृत भाषा के शब्द³—

वयोज्येष्ठ 283, वाग्वाण 283, कदाचित् 283, अस्तु 284,
प्राच्य 285, पाश्चात्य 285, प्रत्याख्यान 285, अधिकृत 308,
पश्चात्ताप 309, श्रीयुत् 310, साक्षन्त 336, प्रायश्चित्त 322,
पुनश्च 322, तद्रूप 322, पराङ्मुख 323, इतस्ततः 323,
स्वभावतः 324, दारिद्र्य 326, तत्काल 335, जीर्ण 412,
इत्यादि ।

यदि उपर्युक्त शब्द-भण्डार को ध्यान से देखा जाय तो यह मालूम होता है कि भले ही निराला की कहानियों में विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु ये शब्द भाषा की व्यावहारिकता का अतिक्रमण नहीं करते, अपितु पोषण ही करते हैं। इसका कारण यह है कि विविध भाषाओं के भी प्रायः उन्हीं शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो व्यावहारिक बने हुए हैं।

3.4.5.5. ग्रामीण अंचल के शब्द—

निराला की कहानियों की भाषा में ग्रामीण अंचल के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई देते हैं। यथा⁴—

1-2-3-4. पूर्व पृष्ठ की तरह यहाँ भी शब्द के साथ 'निराला रचनावली, खण्ड 4' के उस पृष्ठ की संख्या दी गई है, जिस पृष्ठ पर वह शब्द प्रयुक्त है।

कसरत 319, अखाड़ा 319, मेड़ 323, बीघा 325,
पालागन 324, ज़िमीदार 324, बेदखल 324, मिहनत 325,
मजूरी 325, बाकायदा 339, मनाही 357, दियासलाई 383,
ब्याह 427, ढाँढस 438, कलेजा 438, भरती 411,
ऊसर 325, चिट्ठी 354, इत्यादि ।

भाषा की व्यावहारिकता के कारण ही निराला की कहानियों में कुछ शब्दों का प्रयोग विकृत रूप में हुआ है । उदाहरणार्थ¹—

फसल 323, ज़िमींदार 324, ढाई 325, मिहनत 325,
मजूरी 325, काहे का 409, मदरासी 409, उपास 438,
लीडरी 283, जल 284, मीयाद 285, जल्द 300
इत्यादि ।

इसी प्रकार कुछ अभिधानसूचक शब्द भी विकृत होकर प्रयुक्त हुए हैं ।
यथा²—

बंकिम के स्थान पर बाँके 328, राजेन्द्र के स्थान पर राजेन् 300,
इटावा के स्थान पर इटावे 309, ज्योतिर्मयी के स्थान पर जोत 403
इत्यादि ।

3.5. शैली-प्रयोग—

निराला की कहानियों की शैली की महत्वपूर्ण विशेषता है—गतिशीलता । व्यावहारिक जीवन में देखा जाता है कि हम किसी एक ही प्रकार की शैली का प्रयोग नहीं करते, अपितु प्रसंगानुकूल विविध प्रकार की शैली का प्रयोग करते हैं । यथार्थ जीवन की शैली सहज और गतिशील होती है । निराला की कहानियों की शैली भी सहज और गतिशील रहती हुई विविध रूप धारण करती है । अतः यथार्थ-वाद के अनुकूल ही है । निराला की कहानियों में किसी एक विशेष प्रकार की शैली का प्रयोग नहीं हुआ है, अपितु यथावसर विभिन्न शैलियों का सहज प्रयोग हो गया है । कहीं सूत्रात्मक शैली का प्रयोग है तो कहीं व्याख्यात्मक शैली का, कहीं चित्रात्मक शैली का प्रयोग है तो कहीं भावात्मक शैली का, कहीं समास शैली का प्रयोग है तो कहीं व्यास शैली का । वस्तुतः निराला की कहानियों में विवेचन-शैली नहीं, विवेच्य अधिक महत्वपूर्ण होता है । निराला अपने विवेच्य को विवेचित करने के लिए सहज रूप से जिस शैली को अच्छा माध्यम समझते हैं, निःसंकोच रूप से

1-2-3. पूर्व पृष्ठ की तरह यहाँ भी शब्द के साथ 'निराला रचनावली, खण्ड 4' के उस पृष्ठ की संख्या दी गई है जिस पृष्ठ पर वह शब्द प्रयुक्त है ।

उसका प्रयोग कर लेते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों की शैली विविधरूपा होकर स्वाभाविकता का अद्भुत आनन्द प्रदान करती है। यहाँ पर निराला की कहानियों में प्रयुक्त कतिपय शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

3.5.1. सूत्रात्मक शैली—

1. वीर कर्तव्य की ओर देखता है, काल्पनिक भविष्य-विपत्ति की ओर नहीं।¹
2. प्यासा मृग-मरीचिका के सरोवर का व्यंग्य नहीं समझता।²
3. जिनमें शक्ति होती है, अवैतनिक शिक्षक वही हो सकते हैं।³
4. भक्ति बुद्धि नहीं, पर पूजा चाहती है।⁴

3.5.2. आत्मव्यंजक शैली—

इस शैली का प्रयोग निराला की कहानियों में बहुत अधिक हुआ है। यहाँ एक उदाहरण प्रष्टव्य है—

“पगली का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया। उसे देखकर मुझे बार-बार महा-शक्ति की याद आने लगी।”⁵

3.5.3. पत्र-शैली—

“न्यू स्ट्रीट, कलकत्ता
3-9-23

प्रिय सुन्दरजी,

आज शाम को आप अपने मित्र को लेकर जरूर आइये, आपके मित्र वही जो उस दिन, बुध को, आये थे। ज़ियादा और क्या लिखूँ—

आपकी—हीरा”⁶

3.5.4. नाटकीय शैली—

“अमरसिंह— उस समय वह कानपुर में रहती थी।

प्यारेलाल— कानपुर में कहाँ ?

अमरसिंह— मूलगंज में।

प्यारेलाल— क्या करती थी ?”⁷

1. निराला रचनाश्रवली, खण्ड 4, पृष्ठ 362

2. वही, पृष्ठ 416

3. वही, पृष्ठ 381

4. वही, पृष्ठ 399

5. वही, पृष्ठ 374

6. वही, पृष्ठ 289

7. वही, पृष्ठ 297

3.5.5. व्यंग्यात्मक शैली—

“एक दिन पगली के पास रामायणी समाज में कथा हो रही थी।” उसमें हिन्दुओं के मँजे स्वभाव को साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी ने और माँज दिया है, आप लोग जानते हैं ! पाठ सुनकर मँजकर भक्तमण्डली चली। दुबली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बैठी हुई मिली। एक ने कहा— इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा— कर्म के दण्ड हैं। तीसरा बोला— सकल पदार्थ हैं जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं। सब लोग पगली को देखते, शास्वार्थ करते चले गये।”¹

3.5.6. उद्धरण-शैली—

“रामकुमार गम्भीर होकर बोला, ‘आप इसकी चिन्ता न करें।’ मन ही मन कहा, ‘कितना अविश्वास इन्हें ईश्वर पर है— पशु-पक्षि की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करे, अरे मन ! धीरज क्यों न धरे।’ रामकुमार को बालक-काल से ही सन्तों की उक्तियों पर दृढ़ विश्वास करने की आदत पड़ गयी थी। गोस्वामीजी की चौपाई याद आयी, “विश्व-भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।”²

3.5.7. हास्य-विनोदात्मक शैली—

“एकान्त में पत्नीजी मिलीं, बड़ी तत्परता से बोलीं, ‘वहाँ नाच देखकर भूल न जाइएगा।’ ‘राम भजो’, मैंने कहा, ‘वव सूर्यप्रभवो वंशः वव चालपविषया मतिः।’ ‘मैं इसका मतलब भी समझूँ?’ वह एक कदम आगे बढ़कर बोलीं, मन में निश्चय कर कि तुलना में मैंने उन्हें श्रेष्ठ बतलाया है। समझकर मैंने कहा, ‘कहाँ तुम्हारी बाँस-सी कोमल दुबली देह से सूरज का प्रकाश, कहाँ जहर की भरी मोती रण्डी!’ ‘चलो’ कहकर वह गर्व-गुरु-गमन से काम को चल दीं।”³

3.5.8. काव्यात्मक आलंकारिक शैली—

“आकाश के चाँद का फूल पृथ्वी पर ज्योतिर्मय परिमल भर रहा है। कोठे के झरोखों से किरणें, अदृश्य अप्सरानियों-सी दो सहृदयों को प्राथमिक प्रणय के मन्द मुसकान— कपोलों तक चक्राकृति फैलती हुई, आत्मा में मृदु प्रणय-मय, पदों में भूषण की विजय-शिजन। जीने की एक-एक कली पर पैर रखती, रति की मधुर भङ्गति रमाशंकर के भीतर एक-एक कमल खिला देती है।”⁴

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 375

2. वही, पृष्ठ 352

3. वही, पृष्ठ 415-416

4. वही, पृष्ठ 314

3.5.9. चित्रात्मक शैली—

“उठकर मुंशीजी के कमरे में गया। उनकी रेशमी चादर उठा लाया। कायदे से गले में डालकर देखा, फबती है या नहीं। जीने से आहट नहीं मिल रही थी, देर तक कान लगाये बैठा रहा। बालों की याद आयी — उकस न गये हों। जल्द-जल्द आईना उठाया। एक बार मुँह देखा, कई बार आँखें सामने रेल-रेलकर। फिर जीणा बिस्तरे के नीचे दबा दिया। शाँ की ‘गेटिंग मैरेड’ सामने करके रख दी। डिक्शनरी की सहायता से पढ़ रहा था, डिक्शनरी किताबों के अन्दर छिपा दी। फिर तनकर गम्भीर मुद्रा से बैठा।”¹

3.5.10. भावात्मक शैली—

“उसी के ऊपर बसन्त के बाद वाले महीनों के ये दल जैसे शरद की आभा से शुभ्र हो रहे हैं। लालसा-चपल क्या कोई उस पूर्ण विकसित स्खलित शेफालिका-राशि को केसरिए सुगन्ध रंग से अपनी बसन्त की पाग रँगने के लिए वृक्ष के नीचे से चुपचाप चुन ले जायगा? हाय, यह वह सत्य शेफालिका तो नहीं। यह तो केवल देव-चरणों पर चढ़ने के लिए है— माला होकर हृदय पर या रंग बनकर आँखों पर चढ़ने के लिए नहीं।”²

3.5.11. विवरणात्मक शैली—

“वाजपेयीजी को एक ब्याह से सन्तोष नहीं हुआ। दूसरी शादी की। तब मैं पेट में थी। बेहटा मेरा ननिहाल है। सिर्फ नानी थी। ईश्वर की इच्छा, उनका देहान्त हो गया, तब मेरी माँ ने समुर को कई चिट्ठियाँ लिखवायीं, पर उन्होंने खबर न ली। घर में किसी तरह गुजर न हुई तब लोटा-पानी बेचकर, उस खर्च से माँ लखनऊ गयीं। घर में पैर रखते समुर और पति ने तेवर बदले। पति ने कहा, इसके हमल है, हमारा नहीं। समुर ने कहा, बदचलन है, धरम बिगाड़ने आयी है, भली होती, तो चली न आती— वहीँ के लोग परवरिश करते। पड़ोसियों की भी राय थी। सौत ने धरती उठा ली। एक रात को पति ने बांह पकड़कर निकाल दिया। माँ रास्तों पर मारी-मारी फिरी।”³

3.5.12. चित्रात्मक शैली—

“इधर प्रेमपूर्ण का और ही हाल था। पास तो उनके छदाम न था, लेकिन रोबदाब देखिये तो लखपति की भी शान को मात करते थे। वह ट्रेंगलकट् फैशनेबुल बालों की बहार! वह इलाहाबादी सिर पर लखनवी ठाठबाट से बनारसी टोपी!

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 413

2. वही, पृष्ठ 389-390

3. वही, पृष्ठ 420

आधुनिक सभ्यता के अदब से वह बैसाखी मुस्कराहट ! नुकूली नाक पर वह चश्मा ! हरे-हरे ! हाथ में रिस्टवाच, पैरों में दिल्ली का कामदार जोड़ा ! कहाँ तक लिखें, गोया आपके चेहरे पर प्राच्य और पाश्चात्य भाव एक-दूसरे से सप्रेम आलिगन कर रहे थे । पीछे चोटी और आगे इंगलिश फैशन ! उधर कानों के दोनों बगल के बाल नदारत और इधर मूँछें हवा में हिलोरें ले रही थीं ।¹

3.5.13. वर्णनात्मक शैली—

“श्यामनाथ लताकुंज के भीतर पड़ी बेंच पर पड़ रहा था । सामने गुलाब और सीजन प्लावर्स के बीसियों बेड़ज थे । चारों तरफ़ दूब-जमे पार पर यही सुहावना दृश्य था । बीच में प्रायः डेढ़ सौ हाथ चौड़ा और दो सौ हाथ लम्बा, पानी से लबालब भरा तालाब था । खासी अच्छी बड़ी रोहूएँ, भुण्ड के भुण्ड सूर्यास्त से कुछ पहले, खाना खाने के बाद, बिहार कर रही थीं । दो तरफ़ से मोटर आने-जाने वाला पक्का रास्ता था । एक तरफ़ निकास की ड्योड़ी थी, जहाँ सिविल सर्जन रहते थे । भारी गेट से हाथी आते-जाते थे । नारियल, आम वगैरह पक्की सड़कों के किनारे-किनारे लगे हुये थे । पक्के घाट के दोनों ओर पांथ-निवास की भाड़ें थीं ।²

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की कहानियों में प्रयुक्त शैली गतिशील रहकर विविध रूप धारण करती है, जो यथार्थवाद के पूर्णतः अनुकूल है ।

3.6. कहावतें या सूक्तियाँ—

निराला की कहानियों में कहावतों या सूक्तियों का भी स्वाभाविक प्रयोग यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है । प्रयुक्त कुछ कहावतें या सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

1. दूबर होत नहीं कबहूँ, पकवान के विप्र, मसान के कूकर ।³
2. वाक्ये का दरिद्रता ।⁴
3. स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।⁵
4. संस्कृति से ही सन्तति अच्छी होती है ।⁶
5. प्यार की जगह चोट खाकर मनुष्य मुश्किल से सुधरता है ।⁷
6. शुभस्य शीघ्रम् ।⁸
7. गाढ़े में काम न दे, वह मित्र नहीं, दुश्मन है ।⁹

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 285

2. वही, पृष्ठ 444-445

3. वही, पृष्ठ 372

4. वही, पृष्ठ 306

5. वही, पृष्ठ 310

6. वही, पृष्ठ 311

7. वही, पृष्ठ 354

8. वही, पृष्ठ 420

9. वही, पृष्ठ 429

3.7. मुहावरे—

यथार्थवादी साहित्य के अनुरूप निराला की कहानियों में स्वाभाविक मुहावरों का प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ये मुहावरे नितान्त व्यावहारिक हैं। वाक्य में प्रयुक्त होकर ये स्वाभाविकता की सुखद प्रतीति कराते हैं, साथ ही अपने अभीष्ट अभिप्राय को बड़े ही सहज रूप में पाठक तक सम्प्रेषित कर देते हैं। देखिये—

1. अवश्य मिलिए, नहीं तो मैं जान पर खेल जाऊँगी।¹
2. मैंने पूछा भी कि क्या है, जो आज जमीन पर कदम नहीं पड़ रहे हैं।²
3. सुघवा को देखकर बंकिम को कुछ क्षण काठ-सा मार गया।³

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला की कहानियाँ शिल्पपक्ष की दृष्टि से भी यथार्थवाद के पर्याप्त अनुकूल हैं।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 284

2. वही, पृष्ठ 402

3. वही, पृष्ठ 326

चतुर्थ अध्याय

निराला की कहानियों में व्यंग्य और जीवन-संघर्ष

4.0. व्यंग्य यथार्थवादी साहित्य की आत्मा है और निराला की कहानियों की प्रकाशमयी विशेषता है। निराला ने अपनी कहानियों में सर्वहारा वर्ग और उसके जीवन-संघर्ष का भी मनोयोगपूर्वक चित्रित किया है। यहाँ उनका भी पृथक् विवेचन करना यथार्थवाद की खोज का पोषक होगा।

4.1 व्यंग्य शैली मात्र नहीं, जीवनगत यथार्थवादी दृष्टिकोण है—

प्रायः लोग व्यंग्य को एक प्रकार की कथन-शैली ही मानते हैं। वचन-भंगिमा के अतिरिक्त व्यंग्य का कोई स्वरूप उनके सामने नहीं होता है।

वस्तुतः व्यंग्य शैली मात्र नहीं, जीवनगत यथार्थवादी दृष्टिकोण है। हिन्दी के सर्वाधिक जाने-पहिचाने व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई लिखते हैं—

“व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों — मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।”¹

ठीक इसी तरह के विचार डॉ० भानुदेव शुक्ल ने भी व्यक्त किये हैं—

“व्यंग्य अथवा उपहास साहित्यकार के हाथ का वह चाबुक है, जिसकी भार से व्याकुल होकर व्यक्ति, संस्था अथवा समाज सही मार्ग पर चलने को बाध्य किया जाता है।”²

डॉ० बालेन्दुशेखर तिवारी तो समाज-सुधार की भावना से पृथक् व्यंग्य की सत्ता ही स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि—

“व्यंग्य के साथ सुधार और परिवर्तन की लालसा अनिवार्यतः संपृक्त रहती है।”³

कभी-कभी व्यंग्य-रचना काफी निर्दयतापूर्ण, प्रहारात्मक, मखौल-सी एवं अतिरंजनापूर्ण लगती है; किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि एक पवित्र-हृदय और

1. सदाचार का ताबीज, पृष्ठ 10

2. भारतेन्दु-युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य, पृष्ठ 144

3. हिन्दी-साहित्य का स्वातन्त्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, पृष्ठ 254

महान् साहित्यकार की रचना में व्यंग्य के लिए व्यंग्य कभी नहीं होता है। उसका व्यंग्य निर्दयतापूर्ण और अतिशयोक्तिपूर्ण लगते हुए भी दयालु और पूर्णतः सत्य होता है। डॉ० शेरजंग गर्ग इसी अभिप्राय को व्यक्त करते हुए अपनी कृति 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य' में लिखते हैं—

“व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति अथवा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, कथनी और करनी के अन्तरो की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए गम्भीर हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए भी तटस्थ लग सकती है, मखौल लगती हुई बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है।”¹

इस प्रकार व्यंग्य के सन्दर्भ में यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि व्यंग्य मात्र वचन-भंगिमा या शैलीविशेष नहीं, अपितु जीवनगत यथार्थवादी दृष्टिकोण है। यदि कहीं व्यंग्य की स्थिति इसके विपरीत है, तो वस्तुतः वह व्यंग्य साहित्यिक व्यंग्य नहीं है।

निराला के व्यंग्य के सन्दर्भ में तो यह बात हाथ पर रखे आँवले की भाँति स्पष्ट है। कुछ कहने की अधिक आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिये। व्यंग्य के लिए व्यंग्य करना निराला नहीं जानते। निराला का व्यंग्य कोई साधारण व्यंग्य नहीं है, करुणा का तप्त आँसू है, हृदय की टीस है, जीवन में अनुभव से पिया हुआ गरल का प्याला है।

वस्तुतः निराला के व्यक्तित्व पर उनकी पारिवारिक परिस्थितियों और समकालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक वातावरण की गहरी छाप थी। युवा पत्नी और पुत्री की अकाल मृत्यु ने यदि उनमें संवेदनशीलता भर दी, तो भारतीयों पर अंग्रेजों के अत्याचार, सामाजिक रूढ़ियों, प्रकाशकों के दुर्व्यवहार, आर्थिक विपन्नता के कटु अनुभवों आदि ने भी उन्हें यथार्थवादी बनाने में भारी योगदान दिया।

निराला व्यंग्य के बादशाह हैं। यदि किसी को व्यंग्य करना सीखना हो तो निराला को गुरु बनावे। आज के छुट-पुटे व्यंग्यकारों ने यदि निराला को सुना होता तो ऐसे फिज़ूल, तुच्छ व कुरुचिपूर्ण व्यंग्य न करते।

निराला के यहाँ ऐसा व्यंग्य है जो सन्दर्भ में से स्वतः उभरता है। निराला तो बात को सीधे-सादे प्रस्तुत करना चाहते हैं, करते भी हैं, परन्तु परिस्थितियाँ

ही इतनी गहरी हैं कि उनमें से स्वतः ही ऐसा व्यंग्य उभर आता है, जो हृदय को चीर देता है।

निराला की लगभग सभी कहानियों में ऐसे ठोस व्यंग्य का पर्याप्त पुट मिलता है। 'देवी' और 'चतुरी चमार' कहानियों को पाकर तो हिन्दी-साहित्य निराला का चिरकृतज्ञ रहेगा। ये कहानियाँ हिन्दी-साहित्य की गौरवपूर्ण उपलब्धियाँ हैं, जो किसी भी श्रेष्ठतम कहानीकार की श्रेष्ठ कहानी के समक्ष रखकर देखी जा सकती हैं। हिन्दी के विद्वानों में इन दोनों कहानियों की चर्चा सर्वाधिक हुयी है। निराला-साहित्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ विद्वान् समालोचक डॉ० रामविलास शर्मा उक्त दोनों कहानियों का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं—

“निराला ने सन् 30 के बाद 'अप्सरा' लिखी, 'देवी' और 'चतुरी-चमार' भी। जो यथार्थवादी धारा 'अप्सरा', 'अलका' के छायालोक में धुँधली थी, वह वहाँ पूरी शक्ति से यथार्थ की धरती पर प्रवाहित है।..... ये रचनाएँ गद्य-लेखन में, कथा-रचना में, यथार्थवादी साहित्य के विकास में नया चरण है।.....”

(‘देवी’ कहानी में) निराला छायालोक पर हँसते हैं, दुःख और रोष से संसार की व्यंग्यपूर्ण आलोचना करते हैं। दुःख की व्यंजना और हास्य-मिश्रित व्यंग्य के बीच स्पष्ट रेखा नहीं की जा सकती।.....

.....एक महान् ट्रेजेडी की-सी गहराई निराला (की ‘देवी’) के गद्य में है।

पगली (देवी) की क्रियाएँ हास्यास्पद हैं, लक्ष्य है मन में करुण भाव उत्पन्न करना।..... निराला का उद्देश्य हँसाना नहीं, हँसी की झलक के नीचे वेदना का सागर दिखाना है। किंग लियर का लेखक इस कला में अद्वितीय है। हिन्दी में उससे मिलती-जुलती कला निराला के गद्य में है।.....

.....छायावादी कवि निराला ने वह काम किया है, जो बड़े-बड़े यथार्थवादी लेखक भी कम कर पाते हैं।.....

....“चतुरी किसान है, कारीगर भी। अपनी कारीगरी के कारण ‘गोदान’ के होरी की तरह वह टूटता नहीं।.....निराला चतुरी को न आदर्श योद्धा और क्रांतिकारी के रूप में चित्रित करते हैं, न भीतर से वस्तु, टूटा हुआ, आत्मग्लानि से पीड़ित ही। चतुरी में साधारण श्रमिक जनता का साहस है।.....”¹

एक अन्य स्थान पर भी डॉ० रामविलास शर्मा ‘देवी’ कहानी के व्यंग्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—

“व्यंग्यपूर्ण गद्य में ‘देवी’ उनका पहला मास्टर पीस है। इसका व्यंग्य इतना प्रभावपूर्ण इसलिए है कि इसका लक्ष्य व्यक्ति-विशेष नहीं है, परन्तु वह सामाजिक

व्यवस्था है जिसमें मुफ्तखोर पूजे जाते हैं और जिन्हें पुजना चाहिए वे ठोकरें खाते हैं।”¹

उक्त विवेचन से निराला का व्यंग्य सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है।

4.2. व्यंग्य की दिशाएँ—

निराला का व्यंग्य पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी दिशाओं में प्रसरित हुआ है।

4.2.1. राजनीतिक—

राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त दुराचार पर किया गया निराला का यह व्यंग्य द्रष्टव्य है—

“एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। मैं (निराला) उसी बरामदे पर खड़ा स्वागत देख रहा था। पगली भी उठकर खड़ी हो गयी थी। बड़े आश्चर्य से लोगों को देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या था। क्या समझी—आप समझते हैं? भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द भाड़कर चुमकराने लगी और फिर कैसी ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखा, मैं यही समझता हूँ। नेता दस हजार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये, जरूरी-जरूरी कामों में खर्च करेंगे।”²

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस व्यंग्य के तल में कैसी करुणा की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है। ठीक ही कहा है डॉ० रामविलास शर्मा ने—“निराला का उद्देश्य हँसाना नहीं, हँसी की छलक के नीचे वेदना का सागर दिखाना है।”³

इसी प्रकार ‘न्याय’ एवं ‘राजा साहब को ठेंगा दिखाया’ आदि कहानियों में भी राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अराजकता पर करारा, परन्तु करुणामय व्यंग्य किया गया है।

4.2.2. धार्मिक—

इसी ‘देवी’ कहानी में धार्मिकता के पुनीत क्षेत्र में भी व्याप्त विकृतियों का गहरा व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है—

1. निराला, पृष्ठ 163

2. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 374

3. निराला की साहित्य-साधना, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 471

“एक दिन पगली के पास रामायणी समाज में कथा हो रही थी। मैंने देखा, बहुत से भक्त एकत्र थे। एतवार का दिन। दो बजे से साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का पाठ शुरू हुआ, पाँच बजे समाप्त। उसमें हिन्दुओं के मंजे स्वभाव को साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदास ने और माँज दिया है, आप लोग जानते हैं, पाठ सुनकर, मँजकर भक्त-मण्डली चली। दुबल-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बँठी हुई मिली। एक ने कहा, इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा, कर्म के दण्ड हैं। तीसरा बोला, ‘सकल पदार्थ है जग माहीं, कर्म-हीन नर पावत नाहीं।’ सब लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गये।”¹

कितना पैना व्यंग्य है ! हृदय चीर के रख देता है। रोना न आये तो आता है। सचमुच निराला का लक्ष्य व्यंग्य नहीं, मन में कुराव भाव उत्पन्न करना है। सन्देह नहीं कि निराला लक्ष्यपूति में सफल हुए हैं। ‘अर्थ’ एवं ‘भक्त और भगवान’ आदि कहानियों में भी धार्मिकता के नाम पर व्यावहारिक जगत् से अतभिज्ञ रहकर स्वप्नलोक में विचरने वालों की अच्छी खबर ली गई है।

4.2.3. साहित्यिक—

साहित्यिक क्षेत्र की जर्मनाक दशा का व्यंग्यपरक यथार्थ चित्रण भी इसी ‘देवी’ कहानी में देखा जा सकता है। कहानी का प्रारम्भ इसी से होता है—

‘जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बात सोचते थे, यह भ्रम था, इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे पेट के लाले रहे। पर फाकेमस्ती में भी मैं परियों का स्वाद देखता रहा। ‘दुबल होत नहीं कबहूँ, पकवान के विप्र ममान के कूकर’ की सार्थकता मैंने दूसरे मित्रों में देखी, जिनकी निगाह दूसरों की दुनिया की लाश पर थी। वे पहले फटीचर थे, पर अब अमीर बन गये हैं, दोमंजिला मकान खड़ा कर लिया है, मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरो में कहते हैं—‘हाँ, अच्छा आदमी है, जरा सनकी है।’ फिर बड़े गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते हैं, वे उतनी दूर बढ़ गये हैं, मैं जिस रास्ते पर था, उसी पर खड़ा हूँ। जिसके लिए मेरी इतनी बदनामी हुई, दुनिया से मेरा नाम उठ जाने को हुआ, जो कुछ था चला गया, उस कविता को जीते-जी मुझे भी छोड़ देना चाहिए। जिसे लोग खुराफात समझते हैं, उसे न लिखना हो तो लोगों की समझ की सच्ची समझ होगी? रति-शास्त्र, वनिता-विनोद, काम-कल्याण में मशक करते कौन देर लगती है? चार

किताबों की रूह छानकर एक किताब लिख दूंगा। सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि की पावन कथाएँ आँख मूँद कर लिख सकता हूँ। तब बीवी के हाथ 'सीता' और 'सावित्री' देकर बगल में, 'चौरासी आसन' दबाने वाले दिल से नाराज न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ। अब जरूर सँभलूँगा।"¹

कैसा स्पष्ट और तीखा व्यंग्यपरक चित्रण है! इसी भाँति पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त विषमताओं पर निराला ने अपने तीखे व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। उल्लेखनीय यह है कि इस व्यंग्यपूर्ण चित्रण में भी दुःख का गहरा बोध छिपा है।

4.3. सर्वहारा वर्ग का जीवन-संघर्ष—

प्रमुख रूप से 'देवी', 'चतुरी चमार', 'पद्मा और लिलि', 'कमला', 'श्यामा', 'हिरनी', 'परिवर्तन', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'सफलता' एवं 'सुकुल की बीवी'—कहानियाँ सर्वहारा वर्ग से सम्बन्धित कहानियाँ हैं। इनमें किया गया सर्वहारा वर्ग का चित्रण पूर्णतः यथार्थवादी है। किसान, मजदूर, नौकर, परित्यक्ता व विधवा नारी आदि पीड़ित व शोषित वर्ग की स्थितियों का अत्यन्त सजीव दृश्य इनमें दर्शाया गया है। इन कहानियों में कतिपय स्थलों पर सर्वहारा वर्ग के साथ उनका जीवन-संघर्ष भी बताया गया है।

'पद्मा और लिलि' कहानी के अनुसार पद्मा और राजेन्द्र दोनों एक-दूसरे को हृदय से प्रेम करते हैं, परन्तु पद्मा के पिता इसमें बाधक बनते हैं। वे परस्पर जीवन-साथी न बन जावें—इसके लिए वे पुस्ता इन्तजाम कर देना चाहते हैं। उन्होंने अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले पद्मा को एक पत्र लिखा— "मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं, पर अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मान कर चलो— राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह करना। बस!"²

पद्मा और राजेन्द्र का इसके विरुद्ध संघर्ष यह है कि वे दोनों आजीवन विवाह ही न करके देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लेते हैं। निराला की भाषा में पद्मा ने "उसी जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लिया।"³

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 371-372

2. वही, पृष्ठ 305

3. वही, पृष्ठ 305

‘कमला’ कहानी के अनुसार— पितृहीना असहाय कमला एक परित्यक्ता नारी है। पति द्वारा त्याग दिये जाने पर भी, दूसरी शादी कर लेने पर भी कमला अपने आप को सौभाग्यवती ही मानती रहती है, माँग में सिद्धुर लगाती रहती है। और मौका पड़ने पर अपनी व अपने भाई की पूरी शक्ति से पति एवं पति के माता, पिता व पत्नी की सेवा करती है। इसी प्रकार अन्त तक कष्टों के बीच भी अपने न्यायपथ से विचलित नहीं होता कमला का उल्लेखनीय जीवन-संघर्ष है।

इसी प्रकार ‘श्यामा’ कहानी के श्यामा और बंकिम ऐसे व्यक्ति हैं जो अन्ध-विश्वासी एवं रूढ़िवादी समाज द्वारा बहिष्कृत हैं, क्योंकि ये जातीय ऊँच-नीच के क्षुद्र भेदभाव को भूलकर मानवता से प्यार करते हैं। इनका उल्लेखनीय जीवन-संघर्ष यह है कि ये समाज के ऐसे संकीर्ण कटघरे से निकल जाते हैं, आर्य समाज के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। कुछ ही दिनों में इनका प्रणय पति-पत्नी के रूप में भी परिवर्तित हो जाता है। समाज की उक्त ठोकर इनका बाल भी बाँका न कर सकी।

‘सफलता’ कहानी में तो सर्वहारा वर्ग का जीवन-संघर्ष और भी अधिक सशक्त रूप से उभरकर प्रस्तुत हुआ है। नरेन्द्र एक यशस्वी, पर विधुर युवा साहित्यकार है। आभा भी प्रच्छन्नप्रतिभा विधवा युवती है। प्रसंगवश दोनों में प्रेम जागृत हो जाता है। यदि यह प्रेम साकार हो तो समाज के साथ ये दोनों भी निहाल हो जावें। परन्तु कुरुद्वियों के धनी समाज को इन दोनों का यानी कि एक विधवा और विधुर का प्रणयबन्धन स्वीकार कैसे हो? जैसे ही नरेन्द्र और आभा शुभ भविष्य का अनुमान कर दाम्पत्यसूत्र में बँधने के लिए कृतसंकल्प हुये, समाज में खबर उड़ी— “नरेन्द्र बाबू ने आवारगी पर कमर कस ली, बाप-दादे का नाम मिटा दिया।”¹ लेकिन नरेन्द्र जानता था कि “ये कुछ नहीं कर सकते, सब अपनी-अपनी किस्मत को रोयेंगे, जिसे किसी तरह वे फूटा नहीं समझ पाये, थाने जायेंगे, दरोगा के आगे-पीछे दुम हिलायेंगे, कुत्तों की तरह भौकेंगे, पर कुछ कर नहीं सकते। सामने आकर काटना देशी कुत्ते नहीं जानते।”² इसीलिए उसने आभा से खुलकर कह दिया— “आभा, चलो, मेरे घर में बहुत दिनों से अँधेरा है, उसमें प्रकाश भर दो।”³

इस प्रकार की विविध बाधाओं से चित्त हटाकर, दृढ़ आत्मविश्वास के साथ वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक उन्नति कर लेना नरेन्द्र और आभा का साहस-पूर्ण जीवन-संघर्ष है।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 393

2. वही, पृष्ठ 394

3. वही, पृष्ठ 394

‘देवी’ कहानी की तथाकथित पगली का जीवन-संघर्ष बड़ा करुण है। यह समाज और सरकार द्वारा अत्यन्त उपेक्षित है। धार्मिक कहलाने वाली भक्त-मण्डली तक इसे देखकर भी अनदेखा कर चल देती है। देश में शिक्षा देने वाले बड़े-बड़े विश्वविद्यालय हैं, पर पगली के बच्चे के लिए नहीं। सर्दी-गर्मी-बरसात की भिन्नता इसके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। ज्योतिष के सुख-दुःख का चक्र इसके जीवन में अचल हो गया है। बच्चे जहाँ-तहाँ हँसते हुए इसका पीछा करते हैं।

परिस्थितियों की मारी यह दीना-हीना पगली, पगली नहीं, देवी है। निराला को इसमें वह रूप दिखायी पड़ा, जिसे वे कल्पना में लाकर साहित्य में लिखते हैं, केवल वह रूप नहीं, भाव भी। लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं, पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता। निराला कहते हैं— “उसे देखकर मुझे बार-बार महाशक्ति की याद आने लगी। महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे बढ़कर ज्ञान देने वाला और कौन होगा? राम, श्याम और संसार के बड़े-बड़े लोगों का स्वप्न सब इस प्रभात की किरणों में दूर हो गया। बड़ी-बड़ी सम्भ्यता, बड़े-बड़े शिक्षालय चूर्ण हो गये। मस्तिष्क को घेरकर केवल यही महाशक्ति अपनी महासत्ता में स्थित हो गयी। उसके बच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, और उसमें — क्या कहूँ, क्या देखा?”¹

उनका जीवन-संघर्ष यह है कि वह “अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई, धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज जिस विषय को भी मनुष्य होकर मनुष्यों ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचि वाले पथिक को शिक्षा दे रही है, पर कुछ कहकर नहीं। कितने आदमी समझते हैं? यही न समझना संसार है— बार-बार वह यही कहती है। उसकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है— संसार ने उसे जगह नहीं दी, उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है, उसके भी बच्चा है।”²

इसी तरह एक दिन शहर में पलटन का प्रदर्शन हो रहा था। पगली देख रही थी। खुश हो रही थी। “पगली ने खुशी में बच्चे को भी शरीक करने की कोशिश की, माँ अच्छी चीज, अच्छी तालीम बच्चों को देती है। पास बैठे बच्चे की ओर देखकर चुटकी बजाकर सिपाहियों की तरह छंगुली से हवा को कोंच-कोंचकर दिखा रही थी और हँसती हुई जैसे कह रही थी— “खुश तो हो? कैसा अच्छा दृश्य है!”³

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 374

2. वही, पृष्ठ 374

3. वही, पृष्ठ 376

उसके जीवन-संघर्ष का यह एक और दृश्य दर्शनीय है—

“एक दिन मेरे (निराला के) एक मित्र ने पगली से मजाक किया। किसी ने उन्हें बतलाया था कि इसके पास बड़ा माल है, मिट्टी में गाड़-गाड़ कर इसने बड़े पैसे इकट्ठे किये हैं। मेरे मित्र पगली के पास गये और मुस्कराते हुए ब्याज वाली बात समझाकर दो रुपये उधार माँगे। उसकी बात सुनकर पगली जी खोलकर हँसी, फिर कमर से तीन पैसे निकालकर निःसंकोच देने लगी।”¹

इस प्रकार का स्वर्णिम संघर्ष पगली अंत तक करती है। उसकी अन्तिम संघर्षमय स्थिति यह है—

“पगली अस्पताल भेज दी गई। डॉक्टर का कहना है, उसे डबल निमोनिया हो गया। बचेगी नहीं। उसका बच्चा श्री दयानन्द अनाथालय भेज दिया गया है। पगली बच्चे को छोड़ती न थी।”²

यह है समाज की उद्येक्षिता-प्रताड़िता नारी का जीवन-संघर्ष। सचमुच प्रशंसनीय है। ऐसी विषम परिस्थितियों में भी मानृत्व की दीप्त ज्योति जहाँ प्रज्वलित हो (‘पगली बच्चे को छोड़ती न थी।’), वहाँ कैसा अद्भुत जीवन-संघर्ष है!

यद्यपि बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि लगभग उक्त समस्त सर्वहारा वर्ग को विषमताओं का सामना यथावत् करना ही पड़ा है, फिर उसका संघर्ष कैसा? परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि यहाँ विषमता को हृदय में नहीं स्वीकारा गया है, उनके प्रति माया नहीं भुकाया गया है, जो संघर्ष के क्षेत्र में बहुत बड़ी बात होती है। पद्मा और राजेन्द्र ने भले परस्पर विवाह न कर पाया, किन्तु आजीवन अविवाहित रहकर देशसेवा का व्रत ग्रहण करके उनके प्रति अपने विरोध को अवश्य व्यक्त कर दिया। भविष्य को यह चेतावनी दी है कि यदि किसी ने पवित्र प्रेम का विरोध किया, तो उनके पुत्र/पुत्री की ऐसी हालत होगी।

तीर-तोप चलाने का नाम संघर्ष नहीं है, अपितु परिस्थितियों से जूझकर न्यायपथ से प्रविचलित नहीं होना धीरता-वीरता का लक्षण है, अथवा सच्चा और सफल संघर्ष है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला ने अपनी कहानियों में सुरचिपूर्ण व्यंग्य के द्वारा सर्वहारा वर्ग और उसके जीवन-संघर्ष को जिस तरह चित्रित किया है, वह यथार्थवाद के पूर्णतः अनुकूल है।

1. निराला रचनावली, खण्ड 4, पृष्ठ 376

2. वही, पृष्ठ 378-379

सिंहावलोकन

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के समग्र कहानी-साहित्य का भली-भाँति अध्ययन कर लेने के पश्चात् यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संघर्ष-मय जीवन और युगीन विषम परिवेश की प्रताड़ना से निराला अपने इस कहानी-साहित्य में कल्पना-लोक के आकाश से उतरकर पूर्णतः यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े हो गये हैं। छायावादी प्रणय-भावना की दृष्टि से लिखी गई कुछ कहानियों को छोड़कर लगभग सभी कहानियाँ यथार्थवादी कहानियाँ हैं। इनमें भी 'देवी', 'चतुरी चमार', 'श्यामा' आदि कतिपय कहानियाँ तो ऐसी हैं, जो किसी भी उत्कृष्ट यथार्थवादी साहित्यकार की किसी भी अच्छी रचना के समक्ष गौरव के साथ रखी जा सकती हैं।

यथार्थवाद के सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि यथार्थ का अर्थ केवल यथावत् चित्रण नहीं है, अपितु यथोचित चित्रण है, अर्थात् औचित्य के भाव को धारण करता हुआ यथार्थ चित्रण ही साहित्यिक यथार्थवाद है। केवल जीवन की भद्देसताओं और विद्रूपताओं का चित्रण करने वाला यथार्थवाद साहित्यिक यथार्थवाद कदापि नहीं हो सकता है। साहित्यिक यथार्थवाद में सामाजिक सुधार की भावना अवश्य निहित रहती है।

निराला की कहानियों की विषय-वस्तु और उनके पात्रों का चयन एवं चित्रण किसी भी प्रकार की अतिमानवीयता और चामत्कारिकता से बहुत दूर है। निराला ने विषय-वस्तु और पात्रों को हमारे ही समाज से उठाकर ज्यों का त्यों कहानी के ढाँचे में ढाल दिया है। देश-काल सम्बन्धी वातावरण तक भी उनमें यथावत् प्रस्तुत हो गया है।

इन कहानियों में जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित यथार्थवादी चित्रण मिलता है। वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र से सम्बन्धित विविध खट्टे-मीठे प्रसंगों का अत्यन्त सजीव, फलस्वरूप हृदयस्पर्शी चित्रण करने में निराला अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों का नंगा चित्र जिस दृढ़ता के साथ निराला ने यहाँ उपस्थित किया है, वह उन्हें सच्चे अर्थों में उत्कृष्ट यथार्थवादी साहित्यकारों की श्रेणी में स्थापित करता है।

निराला की कहानियों का शिल्प-पक्ष भी एकदम सीदा-साधा एवं आडम्बर-रहित है। भाषा पात्रानुसार और पात्रों के भावानुसार विविध रूप धारण करती है। स्वाभाविकता के निर्वाह में हिन्दीतर भाषाओं का भी यथाप्रसंग प्रयोग हो गया है। व्यावहारिकता और स्वाभाविकता इन कहानियों की भाषा की उल्लेखनीय विशेषता है। इसी प्रकार कहानियों में प्रयुक्त शैली की महत्त्वपूर्ण विशेषता है गतिशीलता, अर्थात् शैली ने भी प्रसंगानुसार विविध रूप धारण किये हैं। शैली की यह विविधरूपता हमारे दैनिक जीवन से मिलती-जुलती होने के कारण स्वाभाविकता का अद्भुत आनन्द प्रदान करती है।

निराला सुरुचिपूर्ण हास्य और व्यंग्य के सफल प्रयोक्ता हैं। कथना से आपूरित व्यंग्य इनके कहानी-साहित्य की आश्चर्यजनक विशेषता है। यहाँ व्यंग्य सचमुच जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों—मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफास करता है। यहाँ व्यंग्य के लिए व्यंग्य नहीं है, शब्दों की भंगिमा वाला व्यंग्य भी नहीं है, यहाँ तो सन्दर्भ से स्वतः उभरने वाला हृदयविदारक व्यंग्य है। इस व्यंग्य के पीछे निराला का उद्देश्य व्यंग्य दिखाना या हँसाना नहीं, अपितु उसके नीचे करुणा और दुःख का अथाह सागर दिखाना है।

किसान, मजदूर, विधवा आदि शोषित या पीड़ित सर्वहारा वर्ग का और उसके सूखे जीवन-संघर्ष का चित्रण भी निराला की कहानियों में काफी उभर कर प्रस्तुत हुआ है, जो यथार्थवादी साहित्य की अनन्य विशेषता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला अपने कहानी-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में एक उत्कृष्ट यथार्थवादी साहित्यकार हैं।

परिशिष्ट

सहायक-ग्रन्थ-सूची

1. अध्ययन—साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध :
डॉ० भागीरथ मिश्र ।
2. आधुनिक हिन्दी-काव्य में यथार्थवाद : डॉ० परशुराम शुक्ल 'विरही' ।
3. आधुनिक कहानियाँ : सम्पादक—डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र ।
4. आधुनिक साहित्य : आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।
5. कथा-आयाम : सम्पादक — पद्मश्री डॉ० एम. मलिक मोहम्मद ।
6. कथाशिल्पी निराला : बलदेव मेहरोत्रा ।
7. कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक—श्यामसुन्दरदास, बी. ए. ।
8. कवियत्री महादेवी वर्मा : डॉ० शोभानाथ यादव ।
9. कहानी का रचना-विधान : डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ।
10. काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय ।
11. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद ।
12. कुल्ली भाट : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ।
13. क्रान्तिकारी कवि निराला : डॉ० बच्चनसिंह ।
14. छायावाद में आत्मामिव्यक्ति : डॉ० शशि मुदीराज ।
15. छायावादयुगीन काव्य : डॉ० अविनाश भारद्वाज ।
16. नाटक और यथार्थवाद : कमलिनी मेहता ।
17. निबन्ध-निलय : सम्पादक—डॉ० सत्येन्द्र ।
18. निराला : सम्पादक—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ।
19. निराला का कथा-साहित्य : डॉ० कुसुम बाण्णोय, सम्पादक—श्रीकृष्णदास ।
20. निराला का गद्य-साहित्य : डॉ० निर्मल जिवल ।
21. निराला-काव्य में सांस्कृतिक चेतना : जगदीशचन्द्र ।
22. निराला की आत्मकथा : सूर्यप्रसाद दीक्षित ।
23. निराला की साहित्य-साधना, द्वितीय खण्ड : रामविलास शर्मा ।
24. निराला के काव्य का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ० वेदव्रत शर्मा ।
25. निराला रचनावली, खण्ड 4 : सम्पादक—नन्दकिशोर ।
26. पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की भूमिका : मदन केवलिया ।

27. प्रसाद-निराला-पंत-महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ :
प्रस्तुतकर्ता—वाचस्पति पाठक ।
28. बिहारी सतसई : कविवर बिहारीलाल ।
29. भारतेन्दु-युगीन हिन्दी-नाट्य-साहित्य : भानुदेव शुक्ल ।
30. रामचरितमानस : गोस्वामी तुलसीदास ।
31. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, द्वितीय भाग : गोविन्द त्रिगुणायत ।
32. शोध-प्रविधि : डॉ० विनयमोहन शर्मा ।
33. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर : सम्पादक—रामचन्द्र वर्मा ।
34. संस्कृत-हिन्दी कोश : वामन शिवराम ग्राम्पे ।
35. सदाचार का ताबीज : हरिशंकर परसाई ।
36. समीक्षा शास्त्र : डॉ० कृष्णलाल हंस ।
37. साहित्य की मान्यताएँ : भगवतीचरण वर्मा ।
38. साहित्य-सिद्धान्त : राम अवध द्विवेदी ।
39. साहित्यस्रष्टा निराला : राजकुमार सैनी ।
40. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : डॉ० श्यामसुन्दर घोष ।
41. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कविता में व्यंग्य : डॉ० शेरजंग नर्ग ।
42. हिन्दी-साहित्य के बाद : डॉ० द्वारकाप्रसाद मिश्र ।
43. हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य : डॉ० बालेन्दुशेखर तिवारी ।
44. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र ।
45. हिन्दी-साहित्य — बीसवीं शताब्दी : बाबू गुलाबराय ।
46. हिन्दुस्तान की कहानी : जवाहरलाल नेहरू ।

— — — — —